प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

[पञ्चम भाग]

अनुवादक—

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी म०

श्री जैन इतिहास ज्ञानभानू किरण नं० ५—

* श्री रत्न प्रभ सूरीश्वरपाद कमलेभ्यो नमः *

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(पञ्चम भाग)

[सम्राट् सम्प्रति के शिलालेख]

गुजराती लेख के मूल लेखक—
डा० त्रिभुवनदास लेहरचन्द, बड़ौदा

हिन्दी अनुवादक—
मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक—
श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु० फलोदी, (मारवाड़)

वीर सं० २४६२	ओसवाल सं० २३९२	वि० सं० १९९२
प्रथमावृत्ति १०००	मूल्य	ई० सन् १९३६

मुद्रक—सत्यव्रत शर्मा, शान्ति प्रेस, आगरा ।

वक्तव्य

वर्तमान बीसवीं शताब्दी इतिहास युग माना जाता है जिन पदार्थों का हम नाम निशान नहीं जानते थे। पर आज पौर्वात्य एवं पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों की सोध एवं खोज से इतने साधन प्राप्त हुए हैं जैसे शिलालेखों ताम्र पत्रों ध्वंश विशेष और प्राचीन ताड़ पत्रों पर लिखे हुए ग्रन्थ जिन्हों के अनुसंधान से अनेक स्थल भूपतियों और देश घटनाओं का सहज ही में पता लग सकता है। हाल ही में श्रीमान् डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचन्द बड़ोदा वाला ने वि० सं० १६८६ के जैन पत्र का रोप्य महोत्सव के विशेषांक में "संप्रति महाराज ना शिलालेखों किंवा पदच्युत सम्राट् अशोक" शीर्षक लेख प्रकाशित करवाया है जिसमें अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जो भारत में प्राचीन शिलालेखों, स्तम्भलेखों, आज्ञा लेखों आज पर्यन्त सम्राट अशोक जो बौद्ध धर्मोपासक के माने जा रहे थे वे सब लेख अशोक के नहीं पर जैन धर्मोपासक सम्राट संप्रति अर्थात् प्रियदर्शन के ही हैं। प्रस्तुत लेख महत्वपूर्ण होने पर भी इसका लाभ केवल गुर्जर-गिराज्ञ विशेष जैन-पत्र के ग्राहक ही उठा सकते हैं। यह हिन्दी भाषा भाषियों से कैसे सहन हो सके। इस हालत में हमने इतिहास प्रेमी मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजीमहाराज से प्रस्तुत लेख का हिन्दी अनुवाद करवाके पाठकों की सेवा में रक्खा जाता है आशा है कि इसको आद्योपान्त पढ़कर जैन-धर्म के गौरव को अपने हृदय में उच्चासन देंगे—"गुण"।

१ २ ३ ४ ५ ६

चित्र परिचय

पुरातत्त्व की शोध खोज से जो ध्वंश विशेष प्राप्त हुए हैं उनमें ये चित्र महत्त्व का है।

गवर्नमेंट आफ इण्डिया कलकत्ता से सन् १८७६ ई० में प्रसिद्ध हुए भारतहूप स्तूपों के आलबम्व में इन चित्रों को भी बतलाया है। डा० शाहकृत "सम्राट् संप्रति" का अप्रसिद्ध साहित्य का अवलोकन करने से पाया जाता है कि सम्राट संप्रति के अविशेषों में हस्ति चिह्न का मुख स्थान है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो इन चित्रपटों का सम्बन्ध प्रभु महावीर की कैवल्य भूमि मध्य पापा (भारत हूप) साथ होना पाया जाता है। आपके सामने जो चित्र हैं उनका परिचय इस लेख में सविस्तार करवा दिया है तथापि पाठकों की जानकारी के लिए संक्षिप्त परिचय करवा देना अप्रसंगिक न होगा।

चित्र नम्बर १ सम्राट् आशोक जिसका राजत्व समय ई०स०पू०

चित्र नम्बर २ महाराजा कुनाल जो अशोक का पुत्र और सम्राट् सम्प्रति का पिता है।

चित्र नम्बर ३ सम्राट् सम्प्रति जिसका राजत्व काल ई० स० पू०

चित्र नम्बर ४ कंचनमाला देवी—सम्राट् सम्प्रति की माता

चित्र नम्बर ५ पद्मावती देवी सम्राट् सम्प्रति की दादी

चित्र नम्बर ६ च्यवन समय हस्तिदर्शन

"प्रकाशक"

शुद्धि पत्रक

इस भाग को पहिले हमने दूसरे भाग का स्थान देना निश्चय किया था। इसके दो फार्म छपने के बाद कई कारणों से छपना बन्द हो गया। इस हालत में दूसरे भाग में जैन राजाओं का इतिहास छपा दिया। पुनः इसको हाथ में लेने के पूर्व चार भाग छप चुके। इस कारण इसको हमने पाँचवें भाग में स्थान दिया है। अतएव पाठक वर्ग को चाहिए कि इस किताब में जहाँ दूसरे भाग का उल्लेख देखें वहाँ पाँचवां भाग ही समझें।

पृष्ठ	पंक्ति	मूल	टीपण नं०	अशुद्धि	शुद्धि
३	८	,,	०	अविश्वनीय	अविश्वानीय
८	८	,,	०	५६	५६८
१६	६	,,	०	३३०	३३०४१
२६	६	,,	०	६५	५
५०	११	,,	०	पच	पत्र
८	२	०	७	२७	२
१६	१७	०	४१	७०	१५

२३—टीपण नं० ५८ से ६३ को एक नम्बर आगे समझना।

पृष्ठ	पंक्ति	मूल	टीपण नं०	अशुद्धि	शुद्धि
२७	८	०	७१	पृ०	पृ० ४५
२७	८	०	७१	पृ०	पृ० ४७
२७	१३	०	७२	पृ०	पृ० १३
२६	८	०	७७	पृ०	पृ० १६
३०	५	०	८०	पृ०	पृ० ५२
३०	६	०	८१	८२	८१
३०	६	०	८१	पृ०	पृ० ४३
३०	७	०	८२	पृ०	पृ० २६
३१	६	०	८६	पृ०	पृ० १८

श्री जैन इतिहास ज्ञान भानू किरण नं० २

* श्री रत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्योनमः *

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

५ पञ्चम

(~~द्वितीय~~ भाग ५)

[महाराजा सम्प्रति के शिला लेख]

किंवा

पदच्युत सम्राट् अशोक

(भारतवर्ष के इतिहास पर नवीन प्रकाश डालता हुआ यह लेख अशोक के शिला लेखों के लिए रूढ़ि सो मान्यता का प्रमाण भूत रूप से प्रतीकार करता है। आज के इतिहास कारों तथा सामान्य जनता की भी यही धारणा है कि "जो जो प्राचीन शिलालेख एवं स्तंभ लेख दिखाई देते हैं, वे सब अशोक की ही कृति हैं। अशोक एक महान प्रभुत्वशाली बादशाह हो चुका है और कहा जाता है बौद्ध धर्म्म के द्वाराही सामान्य जनता का उपकार हुआ हैं, किन्तु ये शिलालेख अशोक सम्राट् तथा बौद्ध धर्म्म के भी नहीं हैं; प्रत्युत सम्राट् सम्प्रति के हैं और उन लेखों में लिखी गई सारी लिपि जैन लिपि

ही है; इस बात को लेखक ने जैन और विशेषतः जैनेतर प्रमाण भूत आधारों द्वारा पूर्ण खोज करके सिद्ध किया है। सारा लेख विचार पूर्वक पढ़ लेने के बाद वह बात साधारणतः ही समझ में आजाती है कि जो महत्व किंवा कीर्ति अशोक को प्राप्त हो रही है, वह सब वास्तव में महाराज संप्रति को प्राप्त होनी चाहिए और इन शिला लेखों के द्वारा उत्पन्न किये हुए प्रभावों का श्रेय बौद्ध धर्म्म को न होकर जैन धर्म्म को है। ऐतिहासिक जगत् में एक महान् परिवर्तन कारी यह लेख इतिहास प्रेमियों के सम्मुख रखा जाता है और इस पर विचार कर वे अपने मन्तव्य इस प्रश्न पर निश्चित करें और इस प्रश्न को उचित न्याय दें इसके लिए इस लेख को यहाँ उद्धृत करना परम उचित है।) [संपादक]

अब तक यह बात मानी जाती है, कि सारे भारत में जो जो प्राचीन शिलालेख स्तम्भलेख इत्यादि दिखलाई देते हैं वे सब सम्राट् अशोक की कृति हैं, यह बात वास्तव में वैसी नहीं है जैसा अब तक माना जा रहा है बल्कि कुछ और ही है, इस बात को सिद्ध करना ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। जब यह बात सिद्ध हो जायगी तब (वास्तव में वैसा है भी) उपरोक्त शीर्षक की सत्यता ज्ञात होगी।

पश्चात्ताप की बात तो यह है कि ग्रीक बादशाह महान् सिकन्दर के भारत पर आक्रमण से पूर्व जो जो बातें हुई हैं, उनका चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न किया गया हो किन्तु अब तक कोई भी पौर्वात्य या पाश्चात्य पुरातत्व वेत्ता इस बात की शोध में निश्चित तथा पूर्ण प्रामाणिक रूप से सफल नहीं हो पाया है। इतना ही नहीं बल्कि जब कभी कोई विशेष शंकास्पद प्रश्न उठ खड़ा होता है उसकी गुत्थियां सुलझाये नहीं सुलझती

उस समय अपने काम करने के ढंग को अर्थात् शोध का मूल पाया ही दोष युक्त है, इस बात को निष्पक्ष होकर तथा उस नवीन बात को संभव मानकर उसे सुधारने के बदले वे तुरन्त ही यह कहने लग जाते हैं कि हिंद के प्राचीन काल की जो अनेक धर्मों की पुस्तकें लिखी गई हैं वे चाहे एक दूसरे वृत्तान्तों से मिलते हुए भले हों; अपने बुद्धि गम्य न होने के कारण उन सब को क्षेपक और काल्पनिक और मात्र दन्तकथा ही बतलाते हैं और उन्हें वे अविश्वनीय बतला कर ऐतिहासिक तथ्यों के लिये व्यर्थ हैं, बतलाते हैं। इस बात से कमसे कम इतना तो अवश्य सिद्ध हो जाता है कि उनकी रीति में कुछ न कुछ सुधारने का स्थान अवश्य है। जिस मुख्य घटना से सारा इतिहास चुना गया है और जो ऊपर कहे हुए अनुसार जिस पर कुछ शंका है वह है ईसा के पूर्व ३२७ के साल की घटना। जिस समय ग्रीक बादशाह महान् सिकंदर भारत पर चढ़ आया था और सिंध के तट पर पड़ाव डाला हुआ था उस समथ मौर्य वंशीय नवयुवक राजा किंवा कुमार उससे मिला था और उस समय के मौर्यवंशी सम्राट् की राजधानी पाटलीपुत्र में जो ग्रीक राजदूत मेगास्थानीज़ रहता था उसने जो कुछ टूटी फूटी बातें अपनी डायरी में लिख रखी थीं, उसमें सेंण्ड्रोकोट्स लिखा था, उसे ग्रीक इतिहास वेत्ता-लेखक मि० जस्टिन और स्ट्रेबो ने बिना किसी साक्षी, प्रमाण आदि दिए हुए ही सेंण्ड्रोकोट्स को चन्द्रगुप्त मान लिया था। उक्त घटना को जो साल ई० पूर्व ३२७ दिया गया है उसके सम्बन्ध में तो कुछ भी शंका नहीं है, कारण कि वह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है किन्तु सेन्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त ही है इस बात को मानते हुए जरा हिच-किचाहट सी होती है।

हम सब गत डेढ़ दो सौ वर्षों से ब्रिटिस सरकार या उसके संरक्षित देशी राज्य की ही शालाओं में पढ़ २ कर बाहर आए होने

के कारण यह दृढ़ विचार सा करने लग गए हैं कि सेण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त ही है और वही सिकन्दर से उसकी छावनी में मिला था। इस विचार को मिटाने की बात तो दूर रही पर उस पर जरा-विवाद या शंका करके उसे कसौटी पर कसने के लिए ज़बरदस्त प्रयास करना पड़ेगा। इसके बाद ही इतिहास का शुद्ध स्वरूप ज्ञात होगा।

इसके लिए दूसरे शोध करने वाले जैसे ईसा पूर्व ३२७ की साल को मध्यवर्ती मान कर दूसरी घटनाओं का काल निश्चित करते गए हैं उसके स्थान पर हमें कोई दूसरी ही घटना को केन्द्र मान कर काम लेना चाहिए।

ऐसे विकट प्रश्न को सामने लाने के पूर्व मुझे एक संपूर्ण पाठक वृन्द से इस बात की प्रतिज्ञा करानी है कि ऐसे विषय पर लिखने का यह मेरा प्रथम प्रयास और उसके ध्येय को किस प्रकार सम्मुख रखना और उसकी चर्चा करके उसे दृढ़ सिद्धान्त रूप में किस तरह रखना। इस विषय में मैं कोई निष्णात नहीं हूँ और इसके लेख में जहाँ कहीं कुछ अविनय या त्रुटि या शिथिलता देख पड़े उन सबको मुझ पर कृपा कर क्षमा करेंगे।

यह बात तो उचित ही है कि जिस किसी ऐतिहासिक घटना का समय निश्चित हो गया हो और किसी दूसरी घटना का साल भी गणित शास्त्र के नियमानुसार ठीक से जच जाय तो उस दूसरी घटना के काल के बारे में जरा भी शंका नहीं रहती और उसे सत्य माना जाता है। इसी नियम के अनुसार सेण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त ही है ऐसा मानने के पूर्व ही मैं मौर्यवंश की वंशावली आपके सम्मुख रक्खूँगा। यह कार्य कुछ कठिन तो अवश्य है किन्तु अनिवार्य्य और उसी के आधार पर आप स्वयं

निर्णय कर लेंगे कि सेण्ड्रोकोट्स कौन है। मौर्य्य वंश की वंशावली लिखने के पूर्व सब से पहले अपने लिए बौद्ध संम्वत् की सहायता आवश्यक है।

तात्पर्य यह कि सारे विषय को व्यवस्थित रखने के लिए इस लेख को मुझे तीन भागों में बाँट देना पड़ेगा। पहला बौद्ध संवत् निर्णीत करके बतलाना, दूसरा मौर्य्यवंश की वंशावली बतलाना और तीसरा अन्तिम और सबसे उपयोगी भाग जिसमें सारे शिलालेख और स्तम्भ लेखों में लिखी हुई बातें, उनकी टीका टिप्पणी और विवेचना के साथ आपके सम्मुख रखकर उसका निर्णय स्वयं आपको करने को सौंपना, कि ये सारी कृतियाँ सम्राट् अशोक की ही हो सकती हैं, या किसी दूसरे व्यक्ति की ?

"विभाग प्रथम"

बौद्ध संम्वत् का निश्चय करने के लिए हमें ईस्वी पूर्व ३२७ के साल को मध्य बिन्दु के रूप में मानकर उससे पीछे चलते चलते शोध करना छोड़ देना पड़ेगा, कारण कि उन दोनों घटनाओं के बीच का काल अनेक शंकाओं, दुर्घटनाओं, भूलों तथा त्रुटियों से पूर्ण है। उसके स्थान पर उसी समय दूसरे जो दो धर्म्म अस्तित्व में थे उनमें से एक (ब्राह्मण धर्म या जैन धर्म में से) जैन धर्म्म की जो घटना सिद्ध हो चुकी है; उसी को मध्य बिन्दु के रूप में मान कर आगे बढ़ना सुन्दर होगा। मेरा कहना जैन धर्म्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर के निर्वाण से तात्पर्य रखता है।

महावीर निर्वाण (मोक्ष प्राप्ति—जिस भाँति दक्षिण भारत के बौद्ध ग्रन्थों में ज्ञान प्राप्ति को ही निर्वाण कहने में आया है

उस अर्थ में नहीं) ईस्वी पूर्व ५२६ में[1] हुआ है। यहाँ पर मुझे यह भी बतला देना आवश्यक है कि जिन विद्वानों को उक्त साल मान्य नहीं है, उन्होंने अपनी गणना से सेण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त ही था, और वही बादशाह सिकन्दर की छावनी में ई० पू० ३२७ में मिला था, इस बात को मान कर ही आगे बढ़ने का प्रयास किया है, किन्तु हम पहले देख चुके हैं कि यह गणना भ्रम पूर्ण है फिर जिसकी नींव कमजोर होती है वह मकान भी कमजोर होता है यह भी सिद्ध ही है।

---

(१) (अ) देखिये हेमचन्द्र सूरी का परिशिष्ट पर्व, (ब) (सेक्रेड) बुक्स आफ दी इस्ट नामक ग्रन्थ माला के क्रमाङ्क अंक २२ में प्रो० जैकोवी की टिप्पणी, जिसमें उन्होंने लिखा कि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों संम्प्रदाय के जैनों के दोनों विभागों वाले महावीर भगवान् का निर्वाण समय (ई० पू० ५२६) के बारे में तो एक ही मत है (स) मिसेज़ स्टीवेन्सन नामक लेखिका के " हार्टऑफ जैनिज़्म " नामक पुस्तक की प्रस्तावना प्र० XIV, (द) सर कनिंगहम की "बुक ऑफ इण्डियन इरोज़" नामक पुस्तक का प्र० ३७ (वि० सं० पूर्व ४७० वर्ष में वीर निर्वाण हुआ था), (य) सर स्टीवेन्सन कृत "कल्प सूत्र" प्रस्तावना VIII और टीका प्र० ६६, (फ़) मेरुतुंगाचार्य की स्थविरावली, डा० भाऊजी दा जी की बनाई हुई (ज० रो० ए० सो० बो० पुस्तक ६ प्र० १४६) (ग़) कर्नल माइल्स (टा० रो० ए० सो० बो० तृतीय भाग प्र० ३५८) (ज) प्रो० कार्पेण्टियर (ई० ए० पु० ४३, १६१४ प्र० १३२)। चाहे जो कुछ हो किन्तु ईसा पूर्व ५२७ का साल दन्त कथा के रूप मेंही भले ही अबतक चलता आया है और ई० पूर्व ४७७ के साल को केवल गणित का हिसाब लगाकर खड़ा किया गया है और इस कारण उसके संम्बन्ध की शेष बातें भी अप्रामाणिक निकले यह बहुत संम्भव है।

ई० सं० पूर्व ५२६[2] के साल से (महावीर निर्वाण से) बुद्ध संवत् की शोध करने के लिए हम अनेक घटनाओं और बातों की सहायता ले सकते हैं किन्तु यहाँ उसका विशेष जिक्र नहीं है, अतएव एक दो इतिहास जो हमें इस कार्य में सहायक हैं मात्र उन्हीं का उल्लेख करूँगा।

(१) सिंहल के इतिहास[3] में बुद्ध भगवान के जीवन की अनेक घटनाए देवाह के राजा अंजन के सम्वत् में इस तरह लिखी हुई मिलती हैं।

(अ) महात्मा बुद्ध का जन्म	अंजन सं०	६८	आयु०
(ब) भिक्षुक होना	,, ,,	९७	,, २९
(स) धर्म प्रवर्तन	,, ,,	१०३	,, ३५
(द) निर्वाण प्राप्ति (ज्ञान प्राप्ति)	,, ,,	१२७?	,, ५९?[4]

(सांसारिक मोह का नाश)

(य) परिनिर्वाण संसार की जंजीर से सर्वथा छुट्टी देह त्याग)

	,, ,,	१४८	,, ८०[5]

(२)राजा अजातशत्रु के राज्य के दूसरे वर्ष में भगवान् महावीर तथा आठवें वर्ष[6] में भगवान् बुद्ध का मोक्ष हुआ है।

(२) महावीर का निर्वाण कार्तिकीय अमावस्या अर्थात् ई० पू० ५२७ के अक्टूबर में हुआ।

(३) इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३२, पृ० २२८।

(४) इसके स्थान पर १२५ और ५७ चाहिए (यह भूल कैसी हुई होगी कुछ ज्ञात नहीं होता)।

(५) केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया प्रथम भाग पृ० १५६।

(६) इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३७ पृ० ३४२, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया प्र० भाग पृ० १५७, प्रो० जे० प्र० कार्पेण्टियर का इण्डियन एण्टीक्वैरी का लेख सन् १९१४ (महावीर के समय) का पृ० १३२।

उक्त दोनों प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उक्त दोनों धर्म्म प्रचारकों के अन्तिम समयों में ६ वर्ष का अन्तर है। भगवान् महावीर की मुक्ति प्रथम तथा महात्मा बुद्ध की मुक्ति (देह त्याग) पीछे से हुई है अर्थात् ई० पू० ५२७ भगवान् महावीर का मोक्ष गमन है अतः ई० पूर्व ५२० भगवान् बुद्ध का मोक्ष सिद्ध है।

महावीर की आयु ७२[७] की लिखी है और मोक्ष ई० पू० ५२६ में है अर्थात् उनका जन्म ई० पू० (५२६ + ७२) ५९८[८] में होगा। इसी प्रकार बुद्ध भगवान् की आयु ८०[९] की लिखी गई है और मुक्ति ई० पू० ५२० में है, इस तरह उनका जन्म ई० पू० (५२० + ८०) ६०० में हुआ माना जा सकता है। उन सब का सम्बन्ध निम्न प्रकार से हो सकता है।

भगवान् महावीर	आयु	आयु	भगवान् बुद्ध
जन्म ई० पू० ५९८	०	०	जन्म ईसा पूर्व ६००
प्रबर्तक धर्मोपदेशक दीक्षा ई० पूर्व ५६८	३०	२९	संसार त्याग भिक्षुकपन ई० पू० ५७१
ज्ञान प्राप्ति, कैवल्य प्राप्ति			प्रवर्तकपन Attenment of Budhahood.

(७) भगवान् महावीर का निर्वाण ई० पू० ५२७ के अक्टूबर में है (देखो टीका नं० २७ इसके पहले अजातशत्रु १८ मास राज्य कर चुका था और महावीर निर्वाण के ६॥ वर्ष बाद बुद्ध निर्वाण है, अर्थात् अजातशत्रु ई० पू० ५२८ के अप्रैल में गद्दी पर बैठा और महात्मा बुद्ध का निर्वाण भी ई० पू० ५२० के अप्रैल में हुआ।

(८) सब जैन ग्रंथ एकमत हैं।

(९) देखिए टीका नं० ५।

Attenmentof Supreme. Knowledge ई० पू० ५५६ ४२	३५ ई० पू० ५६५
मोक्ष (death निर्वाण) ७२ ई० पू० ५२६	५७ निर्वाण[10] ई० पू० ५४३
	८० परिनिर्वाण[11] ई० पू० ५२०

उपरोक्त कोष्ठक से यह भी सिद्ध हो जाता है कि बुद्ध के समस्त जीवन-काल[12] में ही भगवान् महावीर का समय था, उनका जन्म बुद्ध के दो वर्ष बाद और मोक्ष बुद्ध के मोक्ष के ६ वर्ष पूर्व ही होगया है। इस तरह दोनों के आयु काल में ८ वर्षों का अन्तर है। महावीर की आयु ७२ तथा बुद्ध की ८० वर्ष की है।

इस भाँति ये दोनों संवत् निम्नलिखित रूप में सिद्ध हो जाते हैं।

महावीर संवत् (मृ० संवत्) ईसा पूर्व ५२६

बुद्ध संवत्

(१०-११) दक्षिण हिंद वाले (सिंहली, वर्मी, स्यामी) बुद्ध निर्वाण से संवत् गणना करते हैं और उत्तर हिन्द वाले—बुद्ध परिनिर्वाण से संवत् गिनते हैं और इसी कारण इन दोनों संवतों में २२—२३ वर्ष का अन्तर है। महावंश उत्तर हिन्द की और दीपवंश दक्षिण हिन्द की धर्म पुस्तक है जिनसे उन दोनों में उपरोक्त कथनानुसार ही २२—२३ वर्ष का अन्तर रहता है।

(१२) जिस समय बुद्ध भगवान् संग्राम ग्राम में थे वहाँ उन्हें समाचार मिला कि उनके प्रतिद्वन्द्वी महावीर ने पावापुरी में निर्वाण प्राप्त की है और निर्ग्रन्थों में बड़ी फूट हो रही है। (दिग्निकाय पृ० ११७ और आगे २०१ और आगे एवं मज्झिमनिकाय II पृ० २४२ के आगे, इण्डियन एण्टीक्वेरी १९१० पृ० १७७)।

उत्तर हिन्द के अनुसार (महावंश) ई० पू० ५२०[13]
दक्षिण हिन्द के अनुसार (दीपवंश) ई० पूर्व ५४३

द्वितीय विभाग

मौर्यवंश की वंशावली इसका निर्णय करने के लिए तीनों धर्मों की बहुत सी घटनाओं को साक्षी मानना पड़ेगा (तीनों धर्म ब्राह्मण बुद्ध और जैन) और जब उन सबका एक दूसरे से सम्बन्धित मिलता हुआ प्रमाण समर्थन में उपस्थित होजाय तब तो यह बात अवश्य सिद्ध हो जायगी कि "वह ठीक ऐसे ही है इसमें कुछ भी गड़बड़ी नहीं है।

मैं पहले जाँच सम्राट् अशोक से प्रारम्भ करूँगा।

(१) सिंहली इतिहास के अनुसार सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध निर्वाण[14] के २१८ वर्ष बाद हुआ और सिंहली लोगों की गणना[15] (दक्षिण हिन्द) बुद्ध निर्वाण ई० पू० ५४३-४ है इस तरह ५४३-२१८ = ई० पू० ३२५ में अशोक का राज्याभिषेक मानना पड़ेगा।

(२) सुदर्शन विभाश जो चीनी ग्रन्थ है, उसमें लिखा है कि अशोक बुद्ध सं० २१८[16] में हुआ था। चीनी लोग भी सिंहली गणना के अनुसार ही अपनी संवत् गणना करते हैं अतः उसका काल ई० पू० ३२५ ही माना जायगा।

---

(१३) देखिए उपरोक्त ७ वीं ९ वीं और १० वीं टिप्पणियों को।

(१४) देखिए; दीपवंश VI १ और आगे इण्डियन एण्टीक्वेरी ३२ पृ० २६६ और भाग २७ पृ० ३४५।

(१५) ऊपर देखिए टीका नं० ९, १०।

(१६) इण्डियन एण्टीक्वेरी ३७ पृ० ३४९।

(३) डा० फ्लीट[१७] भी अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध संवत् २१८ में उपरोक्त प्रमाणों से मानते हैं।

(४) जनरल सर कनिंगहम अपनी पुस्तक (कॉर्पस इन्स्क्रीप्शन्स इन्डीकॅरम) की प्रस्तावना पृ० ६ (IX) में लिखते हैं कि अशोक का राज्य काल बुद्ध सं० २१५ से २५६ तक ४१[१८] वर्ष तक रहा है। (५४४–२१५ = ई० पू०[१९] ३२६ से ई० पू० २८८ तक)

(५) अन्तिम शाक्य मुनि बुद्ध का निर्वाण सिंहल द्वीप और वर्मा के बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ई० पू० ५४४ में हुआ है और उसके २१८ वर्ष बाद अशोक का राज्याभिषेक हुआ है। उसके पिता का मरण बुद्ध निर्वाण के २१४ वर्ष बाद हुआ था, उसके बाद चार वर्ष में अपने भाइयों को समझा बुझाकर[२०] स्वयं राज्य गद्दी पर बैठा।

इस हिसाब से अशोक के पिता बिन्दुसार की मृत्यु ई० पू० (५४४–२१४) = ३३० में हुई सिद्ध होती है और अशोक का राज्याभिषेक इस भाँति ई० पू० (३३०–४) ३२६ में माना जायगा।

(६) अशोक ई० पू० ३२६ और ३२५ के बीच[२१] में गद्दी पर बैठा।

---

(१७) इण्डियन एण्टीक्वेरी ३७ पृ० ३५०।

(१८) यह ४१ वर्ष का अंक किस तरह आया उसके लिए नीचे देखिए निर्णय पृ० और उसकी टिप्पणी नं० २७।

(१९) वह गद्दी पर बैठा ई० पू० ३२६–३० और उसके चार वर्ष बाद राज्याभिषेक हुआ अर्थात् ई० पू० ३२५।

(२०) बुक आफ इण्डियन इराज़—सर कनिंगहम रचित पृ० ३४ से ३६ तक जो कि दूसरी पुस्तकों में मार डालने का लिखा है।

(२१) देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३२ पृ० २३२, मि० पी० सी० मुकुर्जी, असिस्टेण्ट डाइरेक्टर जनरल आफ आर्किओलोजी।

(७) शिशुनाग वंशीय राजा श्रेणिक गद्दी पर बैठा और अशोक के राजा को अन्त[२२] के (अधिक साफ यह कि उसका मरण हुआ) इस काल के बीच में ३११ वर्ष[२३] का अन्तर है। श्रेणिक राजा ई० पू०५८० में[२४] गद्दी पर बैठा, इस हिसाब से अशोक की मृत्यु ई० पू० (५८०–३११) २६६ हुई मानी जायगी।

(८) भगवान् बुद्ध और सम्राट् अशोक के बीच का अंतर काल[२५] "अब दान शतक" के अनुसार लगभग दोसौ वर्षों का है। इस हिसाब से बुद्ध की मृत्यु ई० पू० ५२० में है अतः अशोक का समय ई० पू० ३२० होगा। (अशोक का राज्याभिषेक इ० पू० ३२५ है और उसके चार वर्ष बाद[२६] उसने बौद्धधर्म को स्वीकार किया ऐसा अर्थ मानने से ही उसका काल (३२५–४) ३२१ वर्ष ईसा पूर्व आता है। यदि गद्दी मिलने के चार वर्ष बाद उसका बौद्धधर्म स्वीकार करना मान लें तो ई० पू० (३३०–४) ३२६–२५ आता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि ई० पू० ३२१ वर्ष में जब अशोक स्वयं बौद्ध हुआ तो उसके

---

(२२) इण्डियन एण्टीक्वेरी ३२ पृ० ३४२ किसी विद्वान् ने मूल का भाषांतर करते हुए Death शब्द के स्थान पर Termination of reign कर दिया ऐसा ज्ञात होता है)।

(२३) वायु पुराण में ३१२ वर्ष और मत्स्य पुराण में ३११ वर्ष लिखा है। (देखिए बुक आफ इण्डियन ईरोज़ पृ० ३५ तथा इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३२ पृ० २३२)।

(२४) देखिए मेरा लेख शिशनाग वंश की वंशावली टीका नं० ५।

(२५) कोर्प्स इन्स्क्रीप्शन इन्डीकेरम-प्रस्तावना XI देखिए।

(२६) दीपवंश IV १८ तथा इण्डियन एण्टीक्वेरी १११४ पृ० १६१, महावंश V १८६।

पहले भी उसका कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो वह धार्मिक पुस्तकों की रचना को महत्व नहीं देता, तिस पर भी ऊपर अनुमान का जिक्र है अतः इसे यहीं छोड़ते हैं।

उपरोक्त आठों प्रमाणों से हम सम्राट् अशोक के बारे में निम्न लिखित बातें समझ सकते हैं।

(अ) उसका गद्दी पर आना और बिन्दुसार का मरण ई० प० ३३०, ३२६ है। प्रै० ४, ५ और ६ के अनुसार)

(ब) उसका राज्याभिषेक गद्दी पर आने के चार वर्ष बाद ई० पू० ३२५ में हुआ (प्रै० १, २, ३, ५, ६ और ८ के अनुसार।

(स) उसका राज्य काल ई० पू० ३३० से ई० पू० २८६ तक ४१ वर्ष[२७] देखिए (प्रै० ४)

(द) उसका मरण ई० पू० २७० (उसकी कुल आयु ८२ वर्ष की मानी जाती है अतः जन्म (२७० + ८२) ३५२ वर्ष ई० पू० में मानना पड़ेगा)। प्रै० नं० ७

(इ) उसने राज्य की लगाम ई० पूर्व २८६ में छोड़ी[२८] (ऊपर 'स' देखिए) और उसका मरण[२९] ई० पू० २७० में हुआ (ऊपर 'द' देखिये) इन दोनों कालों के बीच का १६ वर्ष का समय अशोक ने सन्यस्त दशा और प्रायश्चित करने में लगाया ऐसा ज्ञात होता है।

---

(२७) उसके तीन भाग, प्रथम भाग चार वर्ष राजा के रूप में, फिर बाद के २३ वर्ष महाराज के रूप में और पिछले १४ वर्ष निरीक्षक के रूप में (४ + २३ + १४) कुल ४१ वर्ष।

(२८) देखिए; क० इण्डि० एण्टीक्वेरी ३२ पृ० २३३।

(२९) देखिए प्रमाण द ,, ,,

(अब सम्राट् चन्द्रगुप्त के काल का निर्णय कीजिये)।

(१) ब्राह्मण धर्म के पौराणिक ग्रन्थों में लिखा है कि प्रथम नंद के ठीक एक सौ वर्ष बाद[३०] चन्द्रगुप्त मगधाधिपति हुआ। प्रथम नंद का राज्य काल ई० पू० ४७२ है। इस हिसाब से चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक[३१] ई० पू० ३७२ में हुआ ऐसा कहा जा सकता है। (४७२ = १०० = ३७२)

(२) सिंहली इतिहास के अनुसार चन्द्रगुप्त, बुद्ध सं० १६२ में राज्याधिरूढ़ हुआ था। सिंहली लोग बुद्ध सं० ५४३ वर्ष ई० पूर्व से गिनते हैं। इस हिसाब से (५४३–१६२) ३८१ ई० पूर्व उसका गद्दी पर बैठना होगा। इस हिसाब से गद्दी पर बैठने ६ वर्ष पूर्व[३२] का काल होगा। (देखिये पहला पैराग्राफ़)

(३) जनरल कनिंगहम साहब लिखते हैं[३३] कि चाहे जो कुछ हो किन्तु यह तो सत्य है कि चन्द्रगुप्त की राजगद्दी का काल निर्णय करने में ६६ वर्ष की ग़लती हुई है। ईसा पूर्व ३१६ के बदले बुद्ध सं० १६२ काल होना चाहिए।

---

(३०) देखिए मेरे लेख के शिशुनाग वंश की वंशावली टिप्पणी नं० ११ (चाहे जो कुछ हो अभी तक चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का काल निश्चित नहीं होता है इसके बारे में विशेष शोध की आवश्यकता है)।

(३१) मौर्य वंश कीं स्थापना अथवा चन्द्रगुप्त का गद्दी पर आना ई० पू० ३७२ में हुआ है, किन्तु ५, ६ वर्ष तक नंद जैसे प्रतिद्वन्द्वी का मुकाबिला करने में बीता है दूसरे और चौथे पैराग्राफ़ से मिलाइये।

(३२) मिलाइए ऊपर की टीका नं० ३१ तथा देखिए इण्डि० एण्टीक्वेरी पु० ३७ पृ० ३४५।

(३३) कोरपस इन्स्क्रीप्शन—प्रीफेस–IV।

ईसा पू० ३१६ + ६६ = ई० पू० ३८२ होता है और वह द्वितीय पैराग्राफ़ के अनुसार ठीक भी उतरता है।

(४) जैन पुस्तकों में लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने नंदवंश का नाश[३४] महावीर संवत् १५५ (ई० पू० ३७२) में किया। ई० पू० ५२६–१५५ ÷ ३७१–२ हुए।

(ऊपर के प्रथम पैरेग्राफ़ से मिलाइए)।

(५) मौर्य वंश की स्थापना = चन्द्रगुप्त का गद्दी पर आना बुद्ध सं० १६२ में है।[३५] अर्थात् चन्द्रगुप्त ई० पू० ५४४–१६२ = ३८२ ई० पू० में गद्दी पर बैठा।

उपरोक्त ६ हों प्रमाणों के मिल जाने पर यह स्पष्ट होगया है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के बारे की निम्नलिखित बातें सिद्धि-सी हैं।

(अ) मौर्यवंश की स्थापना अर्थात् चन्द्रगुप्त का राज्याधिकार ई० पू० ३८२ है। (पैराग्राफ़ २, ३ और ५)

(ब) मगध की गद्दी पर उसका राज्याभिषेक हुआ किंवा नंद वंश का अन्त हुआ ई० पू० ३७२ में। (पैराग्राफ़ २ और ४ देखिए)

(स) इसके उपरान्त पुराणों में, बौद्ध पुस्तकों तथा जैन ग्रन्थों आदि सब में[३६] चन्द्रगुप्त का राज्य काल २४ वर्ष होना लिखा है, इस हिसाब से ई० पू० (३८२–२४) ३५८ में उसका

---

(३४) ऊपर की टीका नं० ३१, ३२ को मिलाइए। हेमचन्द्राचार्य का कहना है कि जब यह घटना हुई उस समय वीर सं० १५५ थी। (केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया पु० १ पृ० १५६)।

(३५) इण्डियन एण्टीक्वेरी ३२ पृ० २२७।

(३६) इन्स्क्रीप्शन आफ अशोक, प्रो० हुल्त्श पु० १ प्रस्तावना XXXII देखिए।

राज्य काल समाप्त हुआ, और उसका राज्य काल ई० पू० ३८२ से ३५८ तक २४ वर्ष है।

यहाँ तक मौर्यवंश के पहले के तीन राजाओं का काल निर्णय कर चुके हैं और वह निम्नलिखित प्रकार से सिद्ध हुआ है।

क्रम राजा	गद्दी पर बैठना ई० पू	राज्याभिषेक ई० पू०	राज्य का अंत ई० पू०	राज्य का काल
१ चन्द्रगुप्त	३८२	३७२–१	३५८[३७]	२४
२ बिन्दुसार	३५८[३८]	३४५[३९]	३३०	२८[४०]
३ अशोक	३३०	३२५–६	२८९	४१

(३७) वास्तव में तो इसने ई० पू० ३५८ में जैन दीक्षा ही ली है और उसके बाद बहुत वर्षों तक दक्षिण भारत में श्रवण बेल गोला के पास चन्द्रगिरि पर्वत पर (जिसका नाम ही चन्द्रगुप्त के नाम से चन्द्रगिरि पड़ गया है) रहकर तथा अनशन करके स्वर्गवासी हुआ है। भद्रबाहु स्वामी जब दक्षिण गए उस समय यह उनके साथ विहार में जाता।

(३८) जैन मतानुसार उसने १६ वर्ष राज्य किया है, यह बात ठीक उतरती है ३३०–१६ अर्थात् ईसा पूर्व ३४४–४५ में राज्याभिषेक हुआ माना है इस बीच में ई० पू० ३५८ से ३४५ तक चन्द्रगुप्त स्वयं साधु रूप में जीता रहा होगा। इसीसे अपने बाप के जीते जी बिन्दुसार गद्दी पर नहीं बैठा होगा, इससे यह भी प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्त की मृत्यु ई० पू० ३४५ में हुई होगी।

(३९) देखिए ऊपर की टीका नं० ३८।

(४०) पुराणों में २५ वर्ष लिखा है और बौद्ध पुस्तकों में २८ वर्ष लिखा है (प्रो० हुल्टश, अशोक का लेख, पु० १ पृ० XXXII) जैन मतानुसार उसका राज्य काल मात्र १६ वर्ष है। इस तरह बौद्ध और जैन दोनों मत मिलते हुए हैं देखिए नोट ३८ का खुलासा।

(४१) ऊपर पैराग्राफ़ ५ पृष्ठ ७० में देखिए।

अब आप उक्त वर्षों की तुलना करके निर्णय कर सकेंगे कि महान् सिकन्दर ने ई० पू० ३२७ में भारत पर चढ़ाई की थी, उस समय कौनसा मौर्यवंशी पुरुष उससे मिलने उसकी छावनी में गया होगा; और ग्रीक इतिहासकारों ने जो सेण्ड्रोकोट्स (चन्द्रगुप्त) लिख मारा है उसके लिखने में उन्होंने सत्य का या असत्य का कहाँ समर्थन किया है? तथा वह व्यक्ति कुमार पद पर था य, राज पद पर?

मि० सी० पी० मुकुर्जी भी अपना मत[४२] इस भाँति इस सम्बन्ध में प्रकट करते हैं:—

योरोपीय विचारकों ने बिना पूर्ण प्रमाण के केवल उच्चारण साम्य के आधार पर, जिस भाँति मेसर्स जस्टिन स्ट्रेवो और अन्य सम्मान्य ग्रीक लेखकों ने मेगेस्थनीज़ की कल्पित बात के आधार पर लिख मारा था कि सेण्ड्रोकोट्स अर्थात् चन्द्रगुप्त[४३] और उसने महान् सिकन्दर के साथ भेंट की थी तथा ई० पू० ३१० में सेल्यूकस निकोटर को हराया था और पंजाब में से

(४२) इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३२ पृ० २३२ देखिए।

(४३) इसके विरुद्ध यह प्रश्न उठ सकता है कि सेण्ड्रोकोट्स ही चन्द्रगुप्त था इसका प्रमाण क्या है?। साथ ही उसका समकालीन राजा अशोक मगध की गद्दी पर था और उसके समकालीन रूप में ग्रीस के पाँच भाग करके भिन्न भिन्न पाँच राजा जिनके नाम शिलालेख में हैं वे ही राज्य करते थे इसका क्या प्रमाण है? अथवा अशोक के उस देश में भिक्षुकों के भेजने का प्रमाण कहाँ है? महावंश तथा दीपवंश जैसे प्रधान बौद्ध ग्रन्थों में भी इस सम्बन्ध में एक शब्द भी लिखा हुआ नहीं मिलता।

(जिस देश का दर्शन तक चन्द्रगुप्त के करने का कहीं वर्णन नहीं है) ग्रीकों को निकाल बाहर किया।" इस बात की हाँ में हाँ मिलाकर अटल सत्य के रूप में मान लिया है।

ग्रीक इतिहास की मूल प्रति जिसके आधार पर मेसर्स जस्टिन तथा स्ट्रेबो ने सारे संसार को सेण्ड्रोकोट्स और चन्द्रगुप्त का एक ही होना बतलाया है उसका भाषान्तर मि० क्रिण्डल ने (देखिए पोम्पी ट्रोगी XV 4) किया है और जिसका उद्धरण मि० हुल्ट्ज ने[४४] अपनी पुस्तक में दिया है उसका रूपान्तर मैं यहाँ देता हूँ। गोया कि वह कुछ बड़ा है फिर भी उसके आधार पर बहुत ही ज्ञातव्य बातें स्पष्ट हो जायँगी।

सिकन्दर के राज्य के टुकड़े टुकड़े कर डालने के बाद मि० सेल्यूकस ने भी पूर्व की ओर कई आक्रमण किए। पहले उन्होंने बेबोलोनिया जीता और फिर जीत के घमंड में आकर सेना के साथ बेक्ट्रिअन्सों को अपने अधिकार में किया और उसके बाद भारत पर चढ़ाई की। सिकन्दर के मरण के बाद जिस भाँति गुलामी की जंजीर तोड़ दी गई हो उस तरह उसके सारे सरदारों को वहाँ वालों ने क़त्ल कर डाला। उनका मुख्य सरदार सेण्ड्रोकोट्स था, जिसने भारतीयों के स्वातंत्र्य के वास्ते युद्ध किया था, किन्तु विजय के बाद जो अत्याचार[४५] उसने किये उनसे वह मुक्तिदाता की उपाधि गँवा बैठा। कारण कि गद्दी पर बैठकर[४६]

---

(४४) अशोक के शिलालेख नामक ग्रन्थ पु० १ पृ० XXXIII देखिए।

(४५) अशोक जुल्मी था यह इस बात से सिद्ध होता है।

(४६) उस समय अशोक गद्दी के अधिकारी रूप में राज्य करता था यह इससे मालूम हो सकता है। (ई० पू० ३२७ में)

परदेशी शासकों के ज़ुल्मों से जिनका उद्धार किया था उन्हें ही दासता की बेड़ियों में जकड़ना प्रारम्भ किया। उसका जन्म सामान्य[४७] स्थिति में हुआ था, किन्तु प्रबल सौभाग्य के शकुन के द्वारा उसे यह आशा हो गई थी कि वह स्वयं राज्याधिकारी होगा, कारण कि उसने अपने उद्धत[४८] व्यवहार से जब राजा नन्द्रुम[४९] का अपमान किया और जिसके कारण नन्द्रुम ने उसे मार[५०] डालने की आज्ञा दी थी, उस समय वह अपनी जान

---

(४७) अशोक कैसा बलवान् तथा बहादुर था यह सिद्ध करके बता दिया है साथ ही भारत पर कैसे आक्रमण हुए हैं वह भी मालूम हो जाता है।

(४८) अशोक स्वयं राज्यकर्त्ता का ज्येष्ठ पुत्र नहीं था प्रत्युत मात्र राजकुमार था इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है।

(४९) बौद्ध पुस्तकों में जो अशोक के उग्रस्वभावी होने का वर्णन है उससे भी यही सिद्ध होता है, यदि इसे ही कुछ दूसरे रूप में कहें तो यों कहा जायगा कि अशोक ऐसा नहीं था जो किसी से फँसाया जा सके, मुँह पर ही खरा जवाब देने वाला था, साथ ही यदि प्रतिपक्षी सबल हो तो भी उसकी अयोग्य माँग प्रस्तुत करने पर "जैसे के साथ तैसा" होने में वह स्वयं समर्थ है इसे ख़ूब समझता था।

(५०) नन्द्रुम शब्द में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है। ग्रीक हस्त-लिखित बहुत सी पुस्तकों में नन्द्रुम के स्थान पर अलेक्ज़ेड्रम लिखा है, इससे मालूम होता है कि नन्द्रुम का अपमान नहीं प्रत्युत अलेक्ज़ेण्ड्रम का अपमान हुआ था, साथ ही यह भी प्रश्न होता है कि एक भारतीय राजा से दूसरे भारतीय राजा के राज में उसी का परदेशी राजा की

बचाने के लिए मुट्ठी बाँधकर भागा,[५१] और थककर जब सोया हुआ था उस समय एक बड़ा सिंह आगया था और उस भगे हुए आदमी के शरीर के पसीने को चाट रहा था।[५२] वह ज्योंही जगा सिंह ने चुपचाप अपना रास्ता लिया। इस घटना को शुभ शकुन मानकर वह स्वयं राज्यगद्दी प्राप्त करने के लिए उत्साहित हुआ था और डाकुओं के झुण्ड इकट्ठे करके उस समय की राज्य-सत्ता

छावनी में बिना किसी बोलचाल हुए या बिना कारण के (कारण कि नन्द्रुम शब्द नन्द की द्वितीया विभक्ति का रूप है और नन्द नाम हिन्दू राजा का नाम है परदेशी राजा का नाम नहीं) अपमान करने का कारण क्या है? इससे यह साफ़ सिद्ध होता है कि नन्द को हराकर चन्द्रगुप्त मगध की गद्दी पर आया था इसे साबित करने के लिए कूट पीटकर स्वेच्छापूर्वक ही नन्द्रुम शब्द को अलेक्जेण्ड्रम कर छोड़ा है।

(५१) एक राज्य कर्ता को अपनी छावनी में सलाह करने के लिए बुलाना, और उसे वह न माने उसे मार डालने की आज्ञा देना ही इसे सिद्ध करता हैं कि अलेक्जेण्डर स्वयं कैसा जनूनी रहा होगा और उसे न्याय अन्याय का कैसा विचार रहता रहा होगा।

(५२) एक मनुष्य वह चाहे कैसा ही वीर क्यों न हो, जब उसे सलाह की गोष्टी के लिए बुलाया गया हो उस समय तो वह आख़िर अकेला ही रहेगा! फिर उस समय उसे सिवा भाग जाने का उपाय ही क्या? ऐसे कृत्य सिकन्दर के अनुचित कहे जा सकते हैं उल्टे महत्वाकांक्षी स्वभाव के स्थान पर उसे जुल्मी स्वभाव वाला कहा जा सकता है, कारण कि सामने के अकेले मनुष्य को मार डालना कहाँ की राजनीति कही जा सकती है? ग्रीक लेखक अपने बादशाह को बड़ा बतलाने के लिए चाहे जो विशेषण प्रयोग में लावें, किन्तु सत्य शोधक तो इन बातों से दूसरा ही कुछ अनुमान करेंगे।

को उलट डालने के प्रयत्न में लग गया था। फिर उसके बाद जब सिकन्दर को राजा पर हमला करने के लिए ले जाना चाहता था, उस समय एक ज़बरदस्त जंगली हाथी उसके सामने आया और पालतू की भाँति उसके पास आकर खड़ा हो गया[५३] और जल्दी से अपनी सूँड़ से उसे उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लिया और सारी सेना में उसे अपनी पीठ पर बैठाकर घूमा और लड़ा। इस तरह सेण्ड्रोकोट्स की[५४] विजय हुई और वह भारत पर शासन करने लगा। इस समय सेल्यूकस अपने राज्य की नींव दृढ़ करने और अपना अधिकार जमाने में लगा हुआ था, जिससे उसने पहिले सब ठीक ठीक करके सन्धि[५६] कर ली और

(५३–५४) ऐसी किसी घटना के बारे में बौद्ध पुस्तकों में कोई लेख है या नहीं यह देखना चाहिए। यदि उनमें भी अशोक के बारे में ये ही बातें हों तब तो अशोक वही है सिद्ध हो सके।

(५५) यह भी देखना चाहिये कि सेण्ड्रोकोट्स शब्द का व्युत्पत्ति प्रतिपादित क्या अर्थ है? इसकी जाँच करनी चाहिए। अशोक स्वयं शरीर से बेडौल तथा कुरूप भी था तो ऐसे ही किसी अर्थ का प्रतिपादक सेण्ड्रोकोट्स शब्द तो नहीं है? इस सम्बन्ध में मैं एक ग्रीक के अच्छे लेखक से मिला था किन्तु वे कुछ विशेष स्पष्ट न कर सके।

(५६) अलेक्जेण्डर के बाद गद्दी पर बैठने वाला ग्रीक बादशाह था। उसने ई० पी० ३०५ में भारत पर चढ़ाई की थी। किन्तु मगध-पति को विजित न कर सका था (अशोक कैसा राजनीतिज्ञ तथा शूरवीर रहा होगा यह इससे मालूम हो जाता है, क्योंकि नीकेटोर भी कोई कमज़ोर नहीं था, बल्कि सिकन्दर के समान ही प्रतापी था) और सन्धि के रूप में अपनी पुत्री मगध-पति को दी थी और पाँच सौ हाथी लेकर लड़की की शादी करके अपने देश के लिए यहाँ से सर्वदा के लिए बिदा ली थी।

एएटीगोनस के साथ अपना बल आजमाने के लिए स्वदेश की ओर लौटा।

ऊपर देख चुके हैं कि सेण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त नहीं बल्कि उसका पौत्र अशोक है। इससे दो राज्य अपने आगे बढ़ने के लिए रहे, जिनका समय ६० वर्ष (५७) है। उसी तरह सारे खड़क् लेखों के कर्त्ता का समय भी अशोक को बदल कर उससे ६० वर्ष बाद पीछे खींचकर जिस शासन-कर्त्ता का राज्य मगध पर होगा उसे ही स्वीकार करना पड़ेगा। जिसे अपने विशेष साक्षियों द्वारा आगे इसी लेख में सिद्ध करूँगा।

यहाँ तो केवल इतना ही कह कर सन्तोष करूँगा कि जैन धर्म भी इस विषय में ऐसा ही बतलाता है। जैनधर्म के परम श्रद्धालु भक्तराज के रूप में दो मनुष्यों के नाम प्रसिद्ध हैं, पहले मौर्यवंशी सम्राट् सम्प्रति और दूसरे चौलुक्य वंशी राजा कुमारपाल, उसमें भी राज्य प्रदेश के विस्तार से या जैनधर्म के कार्यों की दृष्टि से तो कुमारपाल सम्प्रति के सामने तो कुछ नहीं के बराबर है। सम्राट् सम्प्रति ने (अ५७) तो कुमारपाल राजा की अपेक्षा आगे बढ़कर जैनधर्म के प्रचार करने में सतत एवं सबल प्रयत्न किया था साथ ही सातों क्षेत्रों (मूर्ति, मन्दिर, पुस्तक, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) को उत्तेजना देने में भी अपनी शक्ति लगाई थी। सारांश यह कि जैनधर्मानुयायी पुरुषों में

---

(५७) चन्द्रगुप्त के २४ }
बिन्दुसार के २९ } कुल मिलाकर ५७ अर्थात् लगभग ६० वर्ष कहा जा सकता है।
अशोक के ४ }

(५७ अ) मिलाइये इस लेख की टीका नं० ९५ को।

सम्राट् सम्प्रति का स्थान सर्वोत्कृष्ट है और जैन उनके अत्यन्त ऋणी हैं; इतना होते हुए भी प्रो० जैकोबी को कहना पड़ता है (गोया कि सम्प्रति के बारे में बहुत सी बातें पढ़ चुके हैं) कि सम्प्रति तो एक काल्पनिक पुरुष है। ऐसा कहने का कारण क्या है? मेरे मतानुसार तो जिस तरह सर कनिंगहम ने अपना मत प्रगट[५८] किया है कि चन्द्रगुप्त के राज्य का प्रारम्भ काल लिखने में ६० वर्ष की भूल हुई मालूम होती है, वही कारण यहाँ भी गड़बड़ी डालने वाला हो गया है।

प्रो० जे० एल० कार्पेण्टियर[५९] ने लिखा है कि "पौराणिक तथा जैन ग्रन्थों में नवें नन्द का जो वर्णन मिलता है वह किसी भी तरह उन्हीं राजाओं के डिओडोरस सिकयुल्स तथा कीन्ट-कर्टीअर्स के दिये हुए वर्णन से नहीं मिलता, उसका वर्णन जिसे उन्होंने जब सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी, पाटलीपुत्र की गद्दी पर था तथा जिसका ग्रीक लेखकों का लिखा हुआ सेण्ड्रो-कोट्स (चन्द्रगुप्त) पुरोगामी था, बतलाया है।

इन सब बातों से यह तो भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि सेण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त नहीं था प्रत्युत अशोक था। अब लेख के तीसरे खंड पर चलते हैं जो अगले दोनों विभागों की अपेक्षा अधिक रसप्रद है।

"विभाग तीसरा"

स्तम्भ लेखों में लिखे हुए प्रत्येक प्रत्येक वाक्य तथा शब्द उनकी रचना और अशोक के जीवन काल के वृत्तान्तों की गूढ़

(५८) देखिए परिशिष्ट पर्व और इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजियन्स एण्ड एथिक्स नामक पुस्तक के जैन शब्द का सारा वर्णन।

(५९) कारपस इन्सक्रीप्शन्स इन्डकैरम प्रीफ़ेस VI।

छानबीन करने के बाद, जो कुछ आज माना जा रहा है उसे भली प्रकार अन्यथा सिद्ध किया जा सकता है, यह होते हुए समय और स्थानाभाव के कारण यहाँ उन तमाम बातों में मात्र दो ढाई दर्जन प्रमाण अपने कथन की पुष्टि में दूँगा और उनके विश्वास योग्य होने पर आप अवश्य मेरी बात को ठीक मान लेंगे ऐसी आशा है।

(१) सब से प्रथम स्तम्भ लेख क्या बतलाते हैं? किस लिए "अहिंसा" अप्राणातिपात को सर्वोपरि स्थान दिया गया है? जिस क्रम से ये लेख लिखने प्रारम्भ किये गए हैं वह प्रारम्भ ही बतला रहा है कि इसका कर्ता जैन ही[६०] होना चाहिए, बौद्ध नहीं।

(२) श्री गिरनारजी की तलहटी में जो सुदर्शन नाम का तालाब था उसके जीर्णोद्धार के सम्बन्ध का लेख वहाँ खुदा हुआ है, उसका भाषान्तर प्रो० पिटर्सन[६१] ने इस तरह किया है "इस तालाब को सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में वैश्यगुप्त[६२] ने खुदवाया और उसका घाट सम्राट् अशोक के समय में हुपस नाम के सूबेदार ने पहली बार बनवाया था, और दूसरी बार का जीर्णोद्धार (मरम्मत) प्रियदर्शिन के समय में किया गया है।"

---

(६०) देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी १९१४ महावीर का समय नामक लेख (तीनों भागों में)।

(६१) अहिंसातत्व को जैसा महत्व जैनधर्म में दिया गया है, वैसा और किसी भी धर्म में दिया गया है, ऐसा सिद्ध होना असम्भव है।

(६२) देखिए भावनगर शिलालेख संस्कृत और प्राकृत पृ० २०।

इस कथन में तीन राज्य काल ([६३]अ) का सूचन हुआ है, एक चन्द्रगुप्त दूसरा अशोक और तीसरा प्रियदर्शिन। इससे सिद्ध होता है कि अशोक और प्रियदर्शिन दो भिन्न-भिन्न मनुष्य हैं। ऐसे शिलालेख रूप प्रमाण से अधिक प्रामाणिक सबूत क्या हो सकता है ? इस पर भी प्रो० जैकोबी सम्प्रति[६४] को काल्पनिक व्यक्ति कहने को प्रस्तुत हुए हैं।

(३) उक्त सुदर्शन के लेख के बारे में बादशाहत के बारे में लिखते हुए प्रो० पिटर्सन लिखते हैं कि "उस राज्यवंशीय पुरुष को जन्मकाल से लेकर उत्तरोत्तर समृद्धि ही वरण करती रही" विशेषण रूप से व्यवहृत ये शब्द जैन सम्राट् सम्प्रति उर्फ प्रियदर्शिन के ही लिए हैं, क्या यह नहीं कहा जा सकता कि जिसने मात्र ६ या १० मास के बालकपन में ही गद्दी प्राप्त की थी?

---

(६३) मगधपति चन्द्रगुप्त के राज्य का विस्तार कहाँ तक था इस से जाना सकता है ।

(प्रश्नः—कौटिल्य अर्थात् चाणक्य, जो चन्द्रगुप्त के मुख्य मन्त्री पद पर था, उसका नाम बिष्णुगुप्त था, उसका इस व्यक्ति से क्या कोई सम्बन्ध हो सकता है ? कारण कि ऐसा बड़ा तालाब बनवाना उसके जैसे साधन वाले पुरुष का ही तो काम नहीं रहा होगा ? किन्तु मूल लिपि की जांच करते हुए तो वैश्यगुप्त ही लिखा हुआ स्पष्ट देख पड़ता है। या अब तक चाणक्य का जो विष्णुगुप्त नाम जाना गया है वैश्यगुप्त ही तो नहीं है। हो सकता है दोनों एक ही व्यक्ति हों या वैश्यगुप्त दूसरा ही कोई हो।)

(६३) इसके लिए लेख के अन्त का परिशिष्ट देखिए।

(६४) सम्प्रति ही प्रियदर्शिन है इसके लिए देखिए प्रमाण ३, ५, १५, २५, २७, २८, और ३०।

(४) प्रो० रा० गो० भांडारकर[६५] लिखते हैं कि "राजा सम्प्रति की आयु मात्र १० दिन की थी तभी वह गद्दी पर बैठाया गया" दश दिवस के स्थान पर १० मास लिखना चाहिए था। किन्तु इससे इतना तो फल निकाल ही सकते हैं कि सम्प्रति जब एकदम बालक था तभी गद्दीपति घोषित किया गया था।

(६५) ऐसा ज्ञात होता है कि[६६] मगध की गद्दी पर एक श्रेणिक राजा हुआ था उसके बाद सत्रहवां राजा सम्प्रति[६७] हुआ है। उस का राज्य काल महावीर सं० २३८ (ई० पू० २८६ से प्रारम्भ हुआ है (जिस समय अशोक का अन्तकाल आया था)[६८] इससे यह भी सिद्ध होता है कि सम्राट् अशोक के बाद पाटलिपुत्र का सम्प्रति ही राज्याधिकारी हुआ था।

(६) कर्नल टाड[६९] लिखते हैं कि "सम्प्रति का राज्यकाल ई० पू० ३०३, ४ में शुरू हुआ अर्थात् सम्राट् सम्प्रति का जन्म ई० पू० ३०४ में हुआ था और १० माश के बाद गद्दीपति हुआ था और पन्द्रहवें वर्ष ई० पू० २९०, ८९ में उसका राज्याभिषेक काल माना जा सकता है।

(७) स्तम्भ लेखों में लिखा है कि[७०] जिस समय सम्राट् प्रियदर्शन का राज्य काल चल रहा था उस समय ग्रीक साम्राज्य

---

(६५) देखिए—श्रीभाण्डारकर की रिपोर्ट VI १८८३-४ पृ० १३५

(६६) देखिए—इण्डियन एण्टीक्केरी पु० ११ पृ० २४६।

(६७) देखिए—शिशुनाग वंश की वंशावली वाला मेरा लेख।

(६८) ऊपर पृ० में "क" तथा नीचे के पैराग्राफ २४ देखिए।

(६९) कर्नल टाड का राजस्थान द्वितीय संस्करण।

(७०) देखिए—स्तम्भ लेख नं० २ तथा १३

के[७१] ५ टुकड़े हो गए थे, जो नाम उन में लिखे गए हैं, उन पाँचों के नामों से यूरोपीय विद्वान् उन का राज्य काल निम्न लिखित अन्दाज़ किये हुए हैं। (१) ई० पू० २६१ से २४६ तक (२) ई० पू० २८५ से २४७ तक (३) ई० पू० २७८ से २४२ तक (४) ई० पू० २५६ और (५) ई० पू० २७२ से २५४ तक

स्तंभ लेखों के खुदवाये जाने का समय भले ही कुछ पीछे हो किन्तु उन में यह तो स्पष्ट लिखा हुआ है कि उपरोक्त घटना (शिला लेखों की) प्रिय दर्शन राजा ने अपने राजगद्दी पर बैठने के आठ वर्ष बाद कलिंग देश जीत लिया था और उसके पूर्व की ही है। अब जो अशोक और प्रियदर्शन एक ही व्यक्ति हो तो ई० पू० ३२५-८ में अशोक का राज्याभिषेक हुआ है उस हिसाब से ई० पू० ३१७ का[७२] आता है और उसे देखते हुए तो ऊपर के

श्री रा० भाण्डारकर अपनी सम्राट् अशोक नामक पुस्तक पृ० १५६ में लिखते हैं कि हिन्दुस्तान के बाहर बौद्ध धर्म का विस्तार अशोक के राज्यकाल (R. E. XIII) में हुआ है इस विषय में विद्वानों को भी शंका है। फिर (पृ० १५८) लिखते हैं कि तिस पर भी ग्रीक लोगों ने बौद्ध धर्म तथा हिन्द के दूसरे धर्मों को स्वीकार किया हो, ऐसे बहुत से प्रमाण (देखिए—इण्डियन एण्टीक्वेरी १९११ पृ० ११-३) पुस्तकों में तथा शिला लेखों में मिलते हैं।

(७१) पृ० के मेरे २७ वें प्रमाण से मिलाइये तथा पृ० के प्रमाण २८ वें को भी मिलाइये। सीलोन का राजा तिसा (ई० पू० २४७-२०७) भी अशोक का समकालीन था ऐसा लिखा है, फिर इस साल के साथ उसका मेल कहाँ खाता है। मिलाइये इस लेख की टिप्पणी नं० १२७ से।

(७२) देखिए—निर्णय व पृ० पर अशोक के वर्षों की गणना।

पाँच सालों में से किसी से भी कोई मेल नहीं मिलता प्रत्युत उस के विरुद्ध ५०-६० वर्ष पहले चला जाता है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि प्रियदर्शन और अशोक दो व्यक्ति हैं।

(८) जनरल सर कनिंगहम[७३] का मत है कि "शिला-लेखों तथा स्तम्भ लेखों में लिखे हुए प्रियदर्शन राजा के अशोक होने के बारे में प्रो० विल्सन अंत तक निश्चित नहीं कर पाये थे।" पुरातत्व के ऐसे प्रचंड अभ्यासी व्यक्ति का जब ऐसा मत है उस समय प्रियदर्शन अशोक ही है यह निश्चय पूर्वक कह देने में अधिक नहीं तो कुछ कुछ कठिनाई तो होगी।

(९) रूपनाथ, वैराट और सहस्राम के लेखों में[७४] २५६ का अङ्क है जिनका वर्तमान लिपि-ज्ञाताओं ने यह अर्थ किया है कि "पूजा में २५६ रात्रि बीत जाने के बाद" किन्तु ठीक अर्थ यह कि "सद्‌मत् के देव पाने के बाद २५६ वें वर्ष में" यह अर्थ तो अभी थोड़े ही काल से माना जाने लगा है इसके पहले तो पहला ही अर्थ माना जाता था।

---

(७३) को० इन्स्क्रीप्शन्स इण्डीकेरम पृ० ४

(७४) देखिए—इण्डियन एण्टीक्वेरी १९१४ पृ० १७३, डा० बुलहर इण्डियन एण्टीक्वेरी VI पृ० १४९ और आगे; डीटो० २२ पृ० २९९ और आगे; एथीग्राफ़िका इण्डीका III पृ० १३४ और आगे; डा० फ्लीट ज० रा० ए० सो० १९०४ पृ० १ वगैरह इन सब में यह लिखा है कि सिद्धपुर, सहस्राम तथा रूपनाथ के शिलालेखों में जो २५६ का अंक है उससे बुद्ध निर्वाण के बाद २५६ वर्ष समझना। इस बात को डा० F. W. थोम्स ने एक दम ग़लत सिद्ध कर दिया है।

प्रो० हुल्टश लिखते हैं[७५] "कि उन्होंने किस लिए (उनकी मान्यता लेख खुदवाने वाला अशोक है इसलिये अशोक को लिखा है) यह २५६ का अङ्क व्यवहृत किया है, अब तक यह नहीं जाना जा सका है" फिर स्वयं लिखते हैं कि डा० प्लीट साहब ने जो यह लिखा है कि (ज० राँ० ए० सो० १६१० पृ० १३१-७) बुद्ध निर्वाण के बाद २५६ वर्ष बीत गया था, इसलिए २५६ रात्रि पूजा की है, इस सूचना के साथ मैं किसी भी भाँति सहमत नहीं हूँ।

अब जो २५६ के अंक को बुद्ध सं० के रूप में मान लें तो बुद्ध का स्वर्गवास ई० पू० ५२० है, उस हिसाब से भी (५२०-२५६) २६४ अर्थात् अशोक की मृत्यु के ६ वर्ष बाद का काल आता है और बुद्ध के निर्वाण के हिसाब से (५४४-२५६) ई० पू० २८८ *अर्थात् अशोक के राज्य भार छोड़ देने का काल आता* है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि शिला लेखों तथा स्तम्भ लेखों के साथ अशोक का कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

---

(७५) इन्स्क्रीप्शन्स आफ़ अशोक पु० १ पृ० XLVII

(७६) बात यह है कि प्रियदर्शन राजा को गद्दी पर बैठे ३२॥ वर्ष (३० + २½ अढीतिसानि देखिए रूपनाथ का लेख) हुए थे, उस समय अर्थात् ई० पू० (३०३-३२॥) २७० के साल में उसने ये लेख खुदवाए थे। और उसके इस खुदवाने का कारण था। और ईसा पूर्व २७० अर्थात् महावीर संवत् २५६ का साल। स्वयं जैनधर्मी होने के कारण उसने महावीर संवत् का उपयोग किया था।

(७७) देखिए—पृ० (ई)

(७८) नीचे के प्रमाण नं० १० को देखिए।

(१०) रूपनाथ, वैराट् तथा सहस्राम के लेख[७९] भी सम्राट प्रियदर्शन के हैं, यह प्रो० पिशल का मत है। इनके मूल लेख का अनुवाद करते हुए डाक्टर बुलहर अपनी अलग सम्मति प्रगट करते हैं, तिस पर भी यह मानते हैं कि प्रो० रीज डेविस जो प्रथम २५६ के साल का निर्णय नहीं कर पाये थे, बड़े शोध के बाद प्रो० पिशल के मत पर पहुँचे थे।

(११) नागार्जुन की गुफा के लेखों में सम्राट् अशोक के पौत्र तथा उसके बाद तात्कालिक गद्दी पर बैठने वाले के रूप में देवानां प्रियदशरथ[८०] का नाम लिखा है, इससे भी निश्चित सा हो जाता है कि अशोक के बाद गद्दी पर बैठने वाला[८१] प्रियदर्शन[८२] राजा ही था और उसी ने गुफा के भीतर लेख खुदवाये हैं और उसका दूसरा नाम दशरथ था।

(१२) महावंश या दीपवंश जैसे सर्व मान्य बौद्ध ग्रन्थों में कहीं भी यवन राजा का नाम तक दिया हुआ नहीं मिलता[८३]

---

(७९) इण्डियनएण्टीक्वेरी पु० ७ पृ० १४२ इसके मूल लेखक प्रो० पिशल हैं किन्तु डा० बुलहर ने इसका अनुवाद करके छपाया है।

(८०) देखिए—प्रो० हुल्टश कृत "अशोक के शिलालेख" भाग १ प्रस्तावना पृ० XXV और XXVIII विशेष के लिए देखिए टीका नं० १२३ व पृ०

(८२) देखिए पृ०　　　　में प्रमाण नं० २४ +

(८२) देखिए—पृ०　　　　में प्रमाण पाँचवाँ।

(८३) (देखिए—रा० भाण्डारकर पृ० १६४) ग्रीक राज्य के प्रदेश में किसी भी बौद्ध भिक्षु ने जाकर धर्म का उपदेश किया हो, यह कहीं भी लिखा नहीं है। (वही पु० पृ० १२६)

डा० वीन्सेंट स्मिथ इस अभाव का कारण[८४] यह बतलाते हैं कि ये पुस्तकें ई० की पाँचवीं और छठी शताब्दी में लिखी गई हैं, या तो इस कारण से इनके लेखक उन्हें भूल गए, या उन देशों के नामों का तात्कालिक नामों से पता न लगने के कारण (इस बीच में लगभग ८०० वर्ष का समय बीत चुका था इससे) उन का निर्देश इन पुस्तकों में नहीं किया गया है।

क्या यह बात मानी जा सके ऐसी है? कि बौद्ध लोग जो जैन धर्म वालों को अपने से पाखण्ड मत के माने और वे अपने धर्म के प्रधान मान्य ग्रन्थों दीपवंश और महावंश जैसे ग्रन्थों में लेखक, यह लिखना ही भूल जायँ कि जिस बात के द्वारा संसार के जानने से उनके धर्म के गौरव की विशेष वृद्धि होती हो, यह बात कठिन है। असल में बात तो यह है कि मौर्य वंशीय राजाओं में केवल अशोक ही बौद्ध धर्म्मी था और उसने इन प्रान्तों में न तो कभी कोई धर्म्मोपदेशक भेजा[८५] और न उसका इनसे सम्बन्ध ही था।

---

(८४) इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३४ पृ० १८३।

(८५) (देखिये इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ३४ पृ० १८१) इतिहास के प्रमाण देखते हुए तो (यहाँ सारे प्रान्तों का विभाग करके नाम किया है) दक्षिण हिन्द के स्वतन्त्र राज्य जैसे चोल, पांड्या, सत्यपुत्र तथा केरलपुत्र तथा पांच भवन राज्य (शिला लेखोंके) किसी का भी पता नहीं लगता।

इतना बतला देना बड़ा ही आवश्यक है कि आज कल ही दक्षिण का देश सुधारा हुआ तथा संस्कृत प्रदेश (आर्यदेश) गिना जाता है, वर्ना ई० की तीसरी चौथी शताब्दी तक विंध्याचल के दक्षिण के सारे

(१३) पाँचवें स्तम्भ लेख में सम्राट् प्रियदर्शिन का पाटली-पुत्र शहर में तथा अन्य शहरों में उसके भाई, बहिन तथा अन्य कौटुम्बिक लोगों का होना बतलाया है। इधर अशोक के लिए ठीक इसके विरुद्ध बात बतलाई जाती है, कहा जाता है कि उसने गद्दी पर बैठते ही अपने राज्याभिषेक के पूर्व ही केवल एक भाई को छोड़ कर दूसरे सारे भाई बन्धुओं को कत्ल कर डाला था, जिससे वह अपना राज्य निष्कंटक होकर कर सके। इधर राजा प्रियदर्शन के पुत्र तथा दूसरी रानियों के पेट से भी पुत्रों का उल्लेख दिल्ली, टोपरा के स्तम्भलेख नं० ७ में भी किया है। इन सब बातों से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये कृतियाँ अशोक की नहीं १।

(१४) ग्रीक लेखक मि० जस्टीन के मतानुसार सेण्ड्रोकोट्स अर्थात् चन्द्रगुप्त का शासन जुल्मी[८६] था, जब कि भारतीय इतिहास से यह बात किसी भी भाँति प्रमाणित नहीं होती।

इस कथन से ही स्थिति सादृश्य समझाया जा सकता है कि मिस्टर जस्टिक तथा मि० स्ट्रेबो ने योरप के पुरातत्व विशारदों ने सेण्ड्रोकोट्स को चन्द्रगुप्त समझा कर किस भाँति भ्रम में डाला

प्रदेश अनार्य प्रदेश ही माने जाते थे। उससे ही जैसे अफ़गानिस्तान, ईरान, अरब, ग्रीस, सीरिया आदि देशों में राजा प्रियदर्शिन का अपने धर्मोपदेशकों का भेजना लिखा है, वैसे ही दक्षिण के अनार्य देशों में भी भेजने का ज़िक्र है।

(८६) देखिए केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया पु० १ पृ० ४७३ तथा पृ० में टीका नं० ४९।

इसके बदले यदि हम सेंड्रोकोट्स को अशोक[८७] मान लें (जैसा कि हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं) तो सब बातों का ठीक सिलसिला जम जाता है।

(१५) शिलालेखों के नीचे में शब्द जहाँ-तहाँ काम में लाए गए हैं, इनसे सिद्ध होता है कि इनका कर्त्ता चुस्त बौद्ध (अशोक) होने की अपेक्षा अधिकांश में कट्टर जैन ही होना चाहिए (प्रियदर्शिन् उर्फ संप्रति)।

(अ) **अनारंभ** (शिलालेख नं० ३, गिरनार के लेख, इंडि० ऐंटि० पुस्तक ३७, पृ० २४)—जैन धर्म में सांसारिक कार्य का आरम्भ करने के लिये हमेशा प्रतिबन्ध किया गया है। क्योंकि इस समग्र कार्य में हिंसारूप पापकर्म का जो उपार्जन होता है, उसका भोक्ता आदि प्रवर्तक ही माना जाता है और हिंसा से निवृत्त होना ही जैन धर्म का प्रथम सूत्र है।

(ब) **मंगलं+धर्म** उपसर्ग=धर्ममंगलं (शि० ले० नं० ६)—ये दोनों शब्द अलग-अलग या एकत्र रूप से जैन धर्म में स्तुति, पद, संझाय अथवा सूत्र के अन्त[८७] में सामान्य रूप से काम में आते हैं और कहीं-कहीं शुभ शकुन के रूप में प्रारम्भ में भी इनका उपयोग किया गया है।

---

(८७) ऊपर के पैरा नं० १४ के वर्णन से तुलना करने पर तथा उससे संबद्ध पादटीका से सेंड्रोकोट्स ही अशोक है, यह बात सिद्ध हो सकेगी।

(८७ अ) देखिए, इस लेख का अन्तिम फुटनोट।

(क) देवनांप्रिय[८७] (सभी लेखों में लिखा गया है)—इस शब्द का उपयोग बहुधा जैन साधु महाराज, किसी भक्त जन को (श्रेष्ठि या राज्यपरिवार अथवा कोई उच्च पदाधिकारी हो तो तो) उपदेश देते अथवा संबोधन करते समय ही सामान्य रूप से हमेशा करते आए हैं और आज भी करते हैं।

(उ) स्वामिता (गिरनार लेख नं० ३)—प्रो० पीटर्सन साहब ने[८८] इसका अर्थ स्वजातिजन की रक्षा करना किया है, जिसे 'स्वामिवात्सल्यता' का नाम दे दिया गया है। जैन सांप्रदायिक शास्त्रों में जिन इनी गिनी वस्तुओं को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है उनमें इस "स्वामिवात्सल्यता" का भी समावेश किया जा सकता है। इससे भी यही पता लगता है कि उनका लिखानेवाला जैन ही है। दूसरे इस शब्द का अस्तित्व भी बौद्ध धर्म में संभव नहीं है। क्योंकि उनमें तो भिक्षुक (monk) और भिक्षिका (Nun) इन दोनों का मिलाकर 'द्विविध संघ[८९] ही है। अर्थात् जब श्रावक और श्राविका तो उनमें हैं ही नहीं, तो फिर 'स्वामिवात्सल्यता' किस प्रकार संभव है ? 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' ? जब जैन धर्म में तो चतुर्विध संघ कहा है (जिनमें साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारों का समावेश होता है)।

(८७ ब) पति-पत्नी भी एक दूसरे को संबोधन करते समय 'देवानांप्रिय' और 'देवानुप्रिये' शब्द का उपयोग कर सकते हैं। (देखिये, कल्पसूत्र की सुखबोधिनी टीका, पृष्ठ ४७)।

(८८) देखिये, "भावनगर के प्राचीन तथा संस्कृत शिलालेख" नामक पुस्तक।

(८९) इस त्रुटि युक्त संगठन के कारण ही (श्रावक-श्राविकाओं

(इ) पाखण्ड (शिलालेख नं० १३)—प्रो० एच० एच० विल्सन साहब जोर देकर बतलाते हैं कि[१०] यह शब्द बौद्ध धर्म का हो ही नहीं सकता।

(क) 'श्वेत' (शिलालेख नं० १३) शब्द भी जैन संप्रदाय का है। यदि इसका अर्थ 'श्वेताम्बर संप्रदाय' किया जाय तो राजा संप्रति उर्फ प्रियदर्शिन् के गुरु आर्य सुहस्ति[११] के समय में जैन धर्म के दो मुख्य विभाग करने की तैयारी हो रही थी—उन दोनों के नाम[१२] आजकल विख्यात ही हैं—'श्वेताम्बर और दिगंबर'। इनमें भी संप्रति राजा श्वेतांबर पन्थ के अनुयायी थे[१३]। अथवा दूसरा अर्थ श्वेत = सफेद

को संघ के अंगभूत नहीं माना गया, इसी से) खासकर बौद्ध धर्म की अवनति होने की बात डा० बरजेस और डा० फर्ग्युसन साहब भी मानते हैं।

(१०) ज० रा० ए० सो०, पु० १२ पृष्ठ २३६।

(११) भगवान् महावीर के दशम पट्ट (पीढ़ी) में ये सूरिजी हुए हैं। इनका सूरि पद महावीर संवत् २१७ से २९२ तक था। इनके बड़े भाई (गृहस्थावस्था एवं दीक्षा में) आर्य महागिरिजी के म० सं० २४९ में स्वर्गवासी होने पर संघ का भार इन्हीं को वहन करना पड़ा था।

(१२) श्वेताम्बर अर्थात् सफेद कपड़े पहननेवाले और दिगम्बर (दिक्‌दिशा रूपी कपड़े धारण करनेवाले अर्थात् जो नग्नावस्था में रहते हैं)।

(१३) आर्य महागिरि जी बड़े थे और आर्य सुहस्ती सूरिजी छोटे। महागिरि जी स्वयं जिन कल्पित आचार का पालन कराने के हिमायती

हाथी[९४] भी किया जाता है। (प्रो० फेर्ज साहब का मत और) इसका तात्पर्य यह बतलाता है कि जब भगवान् बुद्ध[९५] स्वर्ग से च्युत होकर अपनी माता के उदर-गर्भ में आए तब स्वप्न में उनकी माता ने सफेद हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा था। (प्रो० फेर्ज साहब इस प्रसङ्ग को बुद्ध भगवान् के सम्बन्ध

होने पर भी दिगम्बर मत के कहे जा सकते हैं। किन्तु खास दिगम्बर मत तो उनके कई वर्ष बाद स्थापित हुआ है; पर आरम्भ उनके समय से ही माना जा सकता है, जब कि आर्य सुहस्ति जी समय के अनुसार रूढ़ि को बदल देनेवालों में से होने के कारण श्वेताम्बर स्थिति में ही रहे और संप्रति राजा स्वतः भी इन्हें गुरु मानते थे।

(९४) जैन पुस्तकें बतलाती हैं कि (कल्पसूत्र, सुखबोधिनी टीका, पृष्ठ ५८) जब किसी तीर्थंङ्कर का जीव माता के उदर में गर्भ रूप में आता है तब वह चौदह स्वप्न देखती है। चक्रवर्ती की माता भी चौदह, वासुदेव की माता सात और बलदेव की माता चार तथा प्रति वासुदेव की माता भी चार एवं किसी बड़े मांडलिक की माता एक स्वप्न देखती है। (इन चौदह में से ऊपर की किसी भी संख्या में स्वप्न देखे, क्रमबद्ध संख्याओं में ही स्वप्न देखने की कोई बात नहीं है) [इसी लेख की पादटीका नं० २ देखिए।

(९५) अधिक संभव तो यह जान पड़ता है कि राजा संप्रति जब अपनी माता के गर्भ में आए होंगे तब 'श्वेत हस्तिन्' को आकाश से उतरकर अपने मुख द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हुए उसने देखा होगा; इसी से उसने यह सूचित किया होगा कि आगे चलकर यह जीव कैसा निकलेगा। और जब उसका यथार्थ प्रभाव विदित हुआ तब राजा संप्रति ने शिलालेखों में 'हस्तिन्' की आकृति को पहचाना हो। [इसी लेख की पादटीका नं० १ देखिए।]

में प्रयुक्त करते हैं। किन्तु यदि यह बात इसी रूप में हो भी तो भगवान् महावीर के सम्बन्ध में ही यह अधिक सम्भव जान पड़ती है। जिन चौदह स्वप्नों को समस्त तीर्थङ्करों की माताएँ गर्भ-संक्रमण के समय देखती हैं (और जिनमें प्रथम श्वेत हस्ती है) वे जैन धर्म में सुविदित ही हैं। (इसी प्रकार पर्युषण पर्व के समय नगर-नगर और ग्राम-ग्राम के उपाश्रयों में भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदा के दिन भगवान् महावीर के 'जन्म वांचन' समय दर्शन के लिये प्रस्तुत किया जाता है, तथा रथयात्रा के जुलूस के साथ भी श्राविकाएँ अपने सिर पर रखकर नंगे पैर चलती हैं।) किन्तु भगवान् बुद्ध की माता को ये स्वप्न दिखाई दिये थे या नहीं, यह शंकास्पद ही है।

(ग) **संबोधिमयाय** (शिलालेख नं० ८)—इस शब्द का अर्थ विज्ञ जनों ने यह किया है कि "जिस वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध को सर्वोत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, उस बोधिवृक्ष के नीचे—छाया में जाकर"; किन्तु यह भावार्थ असंगत है, जो कि उसके स्वरूप पर से ही कहा जा सकता है। लेकिन इसी के साथ-साथ वे यह भी स्वीकार करते हैं कि सभी शिलालेखों में यदि किसी शब्द का अर्थ करने में सबसे अधिक कठिनाई होती हो तो वह केवल यही शब्द है। किन्तु जैन धर्म में तो यह शब्द अत्यन्त साधारण और निरन्तर उपयोग में आनेवाला कहा जा सकता है और इसका अर्थ "सम्यक्त्वप्राप्ति = संपूर्ण श्रद्धा, सम्यग् दर्शन" होता है।

(१६) भाब्रा शिलालेख के—जिसे वैराट् का द्वितीय शिलालेख भी[१६] कहा जाता है—आरम्भ में ही अशोक को बुद्ध

(१६) दे० रा० भांडारकर-कृत राजा अशोक, पृ० ७३।

भगवान्, धर्म और संघ के प्रति भक्तिभाव प्रकट करनेवाला लिखा है। जिस प्रकार बौद्ध धर्म में त्रिपदी का स्वरूप वर्णन किया गया है, उससे भले ही कुछ विद्वान् इस अर्थ से सहमत हो सकते हों, किन्तु यदि यही अर्थ किया जाता हो तो उसी लेख में आगे की पंक्तियों से उसका सम्बन्ध क्यों नहीं जुड़ता? साथ ही शिलालेखों एवं स्तंभलेखों में जिस धर्म का निरूपण है वह किसी भी रूप में बौद्ध धर्म नहीं हो सकता। इस प्रकार डा० फ्लीट को अन्त तक विश्वास था, क्योंकि उनमें कहीं भी "बुद्ध" शब्द लिखा हुआ देखने में नहीं आता। इसी प्रकार "संघ" शब्द भी केवल एक ही बार आया है; और वह भी ऐसे एक तरफ कोने में कि जिसे इतना महत्त्व ही नहीं दिया जा सकता।

जैसी त्रिपदी का ऊपर निर्देश किया गया है, वैसी ही जैन संप्रदाय में भी "सुदेव, सुगुरु, सुधर्म" इन तीन तत्त्वों से बनी हुई रत्नत्रयम्' कहलाती है। साथ ही सम्यक् दर्शन = सम्यक्त्व-प्राप्ति = बोधि-बीज की प्राप्ति के लिये प्राथमिक आवश्यकता या पहली सीढ़ी के रूप में उसकी गणना की गई है।

(१७) प्रो० हुल्ट्श साहब की यह धारणा है कि स्तंभलेख[१७] नं० ३ में जो मलिन विकृति के स्वरूप और मनोविकार तथा आश्रव [(पाप) आसि नवगामिनी जातम्] की टिप्पणी दी गई है, उसका और बौद्ध धर्म में वर्णित 'आसिव' एवं 'क्लेश' का कोई मेल नहीं बैठता।

---

(१७) देखिए इंस्क्रिपशन कारपोरम् इंडिकेरम् पुस्तक प्रथम, जैनधर्म में १८ पाप स्थानक वर्णन किए गए हैं—(१ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० राग, ११ द्वेष, १२ कलह, १३ अभ्याख्यान, १४ पैशुन्य, १५ रति-अरति, १६ पर-परिवाद, १७ मायामृषावाद, १८ मिथ्यात्वशल्य ।)

(१८) सांप्रत काल में जिस प्रकार मनुष्य-कल्याण के लिए औषधालय और पशु-कल्याण के लिए पिंजरापोल खुले हुए हैं, उसी प्रकार की द्विविध संस्थाएँ राजा प्रियदर्शिन् द्वारा स्थापित की जाने का उल्लेख जिस शिलालेख में मिलता है, वह भी यही सिद्ध करता है कि अशोक (अथवा शिलालेख का कर्ता) स्वतः बौद्ध नहीं वरन् जैन ही था और जो साहित्य आज बौद्ध धर्म में अस्तित्व रखता है, उसके अनुसार अशोक का चरित्र भी इस तरह का नहीं है। इसलिये यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि वे सब कृतियाँ अशोक की नहीं, वरन् अन्य पुरुष और वह भी जैन धर्मानुयायी प्रियदर्शिन् की हैं।

(१९) देवविमान हस्थिन् अग्निस्कंध आदि के दृश्य[९८] प्रजा को आनन्द देने के निमित्त राजा प्रियदर्शिन् ने दिखाने की व्यवस्था की थी[९९]। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिन १४ स्वप्नों की बात हम ऊपर (पैरा नं० १४ में) दिखला चुके हैं, उन्हीं से यह सम्बन्ध रखती है। जिस प्रकार श्रावकों को उसके दर्शन कराए जाते हैं, उसी प्रकार राजा प्रियदर्शिन् ने भी सारी प्रजा का उसका दर्शन कराने की योजना की होगी। इसमें भी दो उद्देश्य गर्भित जान पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि लोगों का मनोरंजन हो और समय का सदुपयोग हो सके तथा

(९८) चौदह स्वप्नों के नाम (कल्पसूत्र—सुखबोधिनी टीका, पृ० १०)—हाथी, वृषभ (बैल), सिंह, लक्ष्मी माता, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कलश, पद्मसरोवर, समुद्र (क्षीरसागर), विमान अथवा भुवन, रत्नराशि तथा अग्निशिखा (इस पर टीका नं० ५ देखिए)।

(९९) देखिए, शिलालेख नं० ४।

ठाले बैठकर लोग दुर्गुणों में प्रवृत्त होने से बचें और दूसरा प्रधान हेतु यह कि अपने धर्म के विषय में लोगों में श्रद्धा उत्पन्न हो।

(२०) स्तंभलेख नं० ५ में पक्षियों के वध, जलचर प्राणियों के शिकार तथा गोधाओं को खस्सी करने आदि अनेक प्रकार की हिंसा के लिये निषेध करनेवाले जिन छप्पन दिनों[१००] की गणना कराई गई है (जैसे कि चातुर्मासि पोसह[१०१] आदि) वे सब जैन धर्म का ही महत्त्व सूचित करने वाले हैं। क्योंकि जैन धर्म में अष्टमी तथा चतुर्दशी का जैसा माहात्म्य माना जाता है, वैसा न तो बौद्ध धर्म में है और न ब्राह्मण धर्म में[१०२]। इसी प्रकार बारह महीने की तीन ऋतुओं के अन्त में आठ-आठ दिन की अट्ठाई, जिसे चातुर्मास कहा जाता है (जिस प्रकार कि कार्तिक चौमासा, फाल्गुन चौमासा और आषाढ़ चौमासा), पूर्णतः प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आयंबिल को दो पंक्तियाँ

---

(१००) सम्राट् अकबर और हीरविजय सूरि नामक ग्रन्थ में जिन दिनों में हिंसा न करने विषयक फर्मान सूरि महाराज ने सम्राट् अकबर से प्राप्त किया था, उन दिनों के साथ मिलान कीजिए (शाही फर्मान छः प्राप्त किए हैं वे) तथा वैराट नगर के पार्श्वनाथ मंदिर में के शिलालेख में १०६ दिन (आँ० लाँ० सर्वे, वेस्टर्न सर्कल, कनिंगहम्) १६१०; प्राचीन जैन लेख-संग्रह भाग दूसरा खण्ड तीसरा, नं० ३७६।

(१०१) देखिए शिलालेख नं० २।

(१०२) मेरी समझ से ब्राह्मण धर्म में चतुर्दशी की अपेक्षा एकादशी का माहात्म्य ही विशेष माना जाता है। बौद्ध धर्म में कौन सी तिथि है, यह मैं नहीं जानता। किन्तु यह तो निश्चित ही है कि जैनधर्म की मान्यता से वह सर्वथा भिन्न ही होगा।

(ओलियाँ) आती हैं (आश्विन और चैत्र मास में) तथा पर्यूषण पर्व की अठाई भी आती है। ये सब जैन धर्म के पवित्र दिन माने जाते हैं और इन दिनों में किसी भी प्रकार की हिंसा होने से रोकने का प्रयत्न करना आवश्यक है तथा यह जैन धर्म के भक्त प्रियदर्शिन् राजा का प्रथम कर्तव्य माना जा सकता है।

(२१) नीचे लिखे शब्द जैन धर्म के ही पारिभाषिक शब्द हैं—पचूपगमन[103] [संस्कृत शब्द प्रत्युपगमन] (स्तंभ-लेख नं० ६) कल्याण और पाप इन दो शब्दों के अर्थ का अन्तर (शिलालेख नं० ५) पंचगुति[104] [वाचागुप्ति अथवा वचनगुप्ति] (शिलालेख नं० १२ तथा ७) तथा इन शब्दों के स्थान पर 'संयम' और 'भावशुद्धि' का प्रयोग किया गया है, आसिनव [आश्रव] (शिलालेख नं० १०, स्तम्भलेख नं० २) समवाय (शिलालेख नं० १२) निझपयि सन्ति (स्तंभलेख ४) भदंत (बाभ्रा लेख) थेरा[105] [दे० रा० भांडारकर, पृष्ठ ६८] ये शब्द[106] अन्य धर्मों में उपयोग में आते नहीं दिखाई देते।

(२२) आसिनव (आश्रव) पाप प्राण, भूत, जीव, सत्त आदि सभी समानार्थी शब्दों की जोड़ी के विषय में भी दे० रा०

(१०३) "प्रतिक्रमण" शब्द के साथ मिलान कीजिए।

(१०४) आठ प्रवचन माताएँ गिनाई गई हैं—पाँच समिति + तीन गुप्ति = आठ। इनमें तीन गुप्तियों के नाम हैं मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

(१०५) बौद्ध धर्म में भिक्षुक शब्द का प्रयोग होता है—दे० रा० भांडारकर-कृत अशोक, पृ० ६८।

(१०६) पैरा २१ में बतलाए हुए इस शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण करने का यह स्थान नहीं है।

भांडारकर कहते हैं कि[१०७] इस विचित्र 'आसिन' शब्द (स्तंभ-लेख नं० ३) का अर्थ क्या होगा। सेनार्ट साहब ने उसे 'पाप' शब्द के साथ जोड़कर क्यों लिखा होगा ? बौद्ध दर्शन-शास्त्र में पाप और आश्रव इन दो शब्दों का भेद कहीं भी बतलाया नहीं गया। इसी प्रकार प्राण और भूत के बीच का भेद भी कहीं वर्णन नहीं किया गया है। किन्तु जैन दर्शन में इन सब शब्दों के बीच का अन्तर भली भाँति समझाया गया है। साथ ही 'जीव' और 'सत्त'-विषयक भेद भी समझाया गया है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि ये सब शब्द जैन-साम्प्रदायिक हैं और इसलिये इनका लिखवानेवाला जैन होना चाहिए।

(२३) प्रो० हुल्ट्श साहब यों निवेदन करते हैं कि बौद्धमत की तत्वविद्या में देवविद्या और आत्मविद्या-विषयक जो विकास-क्रम बतलाया गया है, उसमें और शिलालेखों की लिपि में 'धम्मपद'[१०८] विषयक जो विकासक्रम लिखा गया है अत्यधिक अन्तर है। उनमें 'निर्वाण' के सदृश कोई सिद्धान्त ही दृष्टि-गोचर नहीं होता। किन्तु इस संसार में अच्छे कार्य किए जाने से उनके फल-स्वरूप दूसरे जन्म में विशेष सुख[१०९] मिलने विषयक हिन्दू धर्म का जो सामान्य सिद्धान्त है, उसी से मिलता-

(१०७) देखिए, दे० रा० भांडारकर कृत "अशोक" नाम की पुस्तक, पृष्ठ १२७, १२८, १३०।

(१०८) कोर० इंस्क्रिप्शन् इ'डिके०, पु० १ (अशोक के शिला-लेख), पृ० XLVII.

(१०९) देखिए, शिलालेख नं० ९, १०, ११ और १३; धौली के लेख नं० १ और २; स्तंभलेख नं० १, ३, ४ और ७।

जुलता ही बौद्ध धर्म का सिद्धान्त भी है। क़िन्तु अशोक ने तो दूसरे जन्म में सुख प्राप्त होने की बात लिखने के बदले बारंबार 'स्वर्ग'[110] शब्द का प्रयोग किया है। और **धम्मपद, स्वर्ग** तथा **निर्वाण** का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया है।

यदि किसी भी दर्शन में स्वर्ग (देवलोक जहाँ जीव को सीधा मोक्ष प्राप्त हो ही नहीं सकता और संसार-भ्रमण शेष रह जाता है) और मोक्ष (जहाँ जाने पर जीव को बारम्बार जन्म धारण नहीं करना पड़ता; अर्थात् संसार का अन्त ही मोक्ष है) इन दो शब्दों के बीच का भेद बतलाया गया हो तो वह केवल जैन-दर्शन ही हो सकता है। इससे भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि शिलालेखों की **धम्मलिपि** की समग्र रचना ही जैन धर्म के अनुसार खोदी गई है।

(२४) तिब्बत देश के ग्रन्थों में लिखा गया है[111] कि संप्रति पादशाह (उन ग्रन्थों में संप्रति के बदले "संबादि" शब्द लिखा गया है) म० सं० २३५ में सिंहासनासीन हुआ था। **दिव्यदान**[112] नामक ग्रन्थ में मगध देश के राजाओं की जो क्रमबद्ध तालिका दी गई है उसमें भी इस[113] संप्रति को अशोक का पौत्र और कुणाल का पुत्र बतलाया गया है।

---

(११०) देखिए, रूपनाथ, सहसराम और वैराट के शिलालेख, ब्रह्मगिरि और सिद्धपुर के शिलालेख नं० ६ और ६, धौली के शिलालेख नं० १ और २।

(१११) इंडि० एंटि०, पुस्तक ३२, पृ० २३०।

(११२) वही, १९१४, पु० १६८ का फुटनोट नं० ६७ (प्रो० जे० एन० कार्पेण्टर।

(११३) इसी लेख का प्रमाण नं० ११ और नोट नं० २

(२५) प्रो० पिशल साहब की दृढ़ सम्मति है कि रूपनाथ, सहसराम और वैराट के शिलालेख भी संप्रति महाराज के ही खुदवाए हुए हैं। इस अभिप्राय के साथ प्रो० रीज डेविस सा०[११४] भी सहमत हैं।

(२६) शिलालेख नं० ८ मुख्यतः शिकार को बन्द करने से सम्बन्ध रखता है, और अपने राज्याभिषेक के बाद दसवें वर्ष खुदवाया गया है। अतः यदि वह सम्राट् अशोक के समय का होता तो वह खुद ही उस समय पशुओं का शिकार बन्द कराने के बदले मनुष्य-संहार करने में निमग्न क्यों रहता[११५] ? मनुष्य-घृणा के कारण ही उसने एक नरकालय नाम का स्थान निर्माण किया था और उस मार्ग से यदि कोई मनुष्य निकल जाता तो फिर वह, भले ही अपराधी हो चाहे सर्वथा निर्दोष, या तो फाँसी के तख्ते पर लटका दिया जाता या गर्म तेल की कड़ाही में डाल कर मार डाला जाता था। जहाँ स्वयं सम्राट् की मनोदशा इस प्रकार की हो, उससे यह आशा करना कि उसकी ओर से शिकार के निषेध का फर्मान निकाला जायगा—बिलकुल मूर्खता-पूर्ण ही कहा जायगा। उसमें भी फिर जो बौद्ध धर्म का परम भक्त हो, जिसमें कि—यदि मेरी भूल न हो तो—मृगया में मारे हुए प्राणियों के मांस को आनन्दपूर्वक उदरस्थ करने का विधान हो—उसकी ओर से यह आशा करना सर्वथा मूर्खतापूर्ण ही कहा जायगा। ये सब बातें हमें इसी अन्तिम परिणाम पर पहुँचने के लिये बाध्य करती हैं कि इन शिलालेखों का कर्ता कोई बौद्धमतानुयायी नहीं वरन् जैन ही हो सकता है; और वह

(११४) इंडि० एंटि०, पु० ६, पृ० १४६।

(११५) पादटीका नं० २ से इसकी तुलना कीजिये।

दूसरा कोई नहीं वरन् खुद राजा प्रियदर्शिन् ही होना चाहिए, जिसने राज्याभिषेक होने के पश्चात् नवें वर्ष (श्रावक के) आठ व्रत[११६] ग्रहण किए थे।

(२७) सम्प्रति राजा की जीवनी के विषय में जैन ग्रन्थों में[११७] निम्न प्रकार से उल्लेख मिलता है—दिग्विजय करके वापस लौटने के बाद एक दिन जब वह अपने महल के गवाक्ष में बैठा था, उस ओर से जीवन्त स्वामी की रथयात्रा का जुलूस निकला। उस रथ के ऊपरी भाग पर दोनों[११८] सूरि महाराज चल रहे थे। उन्हें देख कर विचार करने पर जाति-स्मरण-ज्ञान होने से अपने पूर्व जन्म का दृश्य देखते ही राजा को मूर्च्छा आ गई। इसके बाद मन्त्रियों द्वारा वायु-प्रक्षेप आदि शीतोपचारों से वह सचेत हुआ और तत्काल ही महल से नीचे आकर उसने गुरु महाराज की तीन प्रदक्षिणा करने के बाद प्रणाम करते हुए पूछा—"भगवन्, क्या आप मुझे पहचानते हैं?" तत्काल ही सूरि महाराज ने ज्ञान के बल पर उसे अपने क्षुल्लक शिष्य के रूप में पहचान लिया। राजा को गुरुवचन पर श्रद्धा हुई और उसने तत्काल ही जैन धर्म स्वीकार कर लिया। इसके दो वर्ष बाद उन्होंने कलिंग देश जीता और व्रत उच्चारण किए। फिर सम्यक्त्वधारी श्रावक बनकर संघ सहित वे तीर्थयात्रा के

(११६) आगे का २७वाँ पैराग्राफ़ देखिए।

(११७) हेमचन्द्र सूरि का "परिशिष्टपर्व" महान् सम्प्रति नामक उनका जीवनचरित्र तथा भरतेश्वर बाहुबलवृत्ति आदि ग्रंथ देखिए।

(११८) आर्य महागिरिजी और आर्य सुहस्ति दोनों ही, सांसारिक दृष्टि से, सगे भाई थे और दीक्षावस्था में गुरुभाई थे। विशेष के लिए देखिए, टीका नं० २—३ और ४।

लिये रवाना हुए। कुएँ बनवाए, धर्मशाला और दानशाला आदि स्थापित कीं, अनेक मन्दिर-निर्माण कराए, जैन बिम्बों को भराया और अंजन-शलाका कराई। इसी प्रकार अनेक शुभ कार्य सम्पन्न किए।

इन सब बातों के लिए किसी प्रकार के प्रमाण या टीका अथवा स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। शिला-लेखों में लिखित समस्त वर्णन से भी उसका समर्थन होता दिखाई देता है।

(शिलालेख नं० ८ में) उनके राज्याभिषेक के बाद नवें वर्ष आठ व्रत [११९] ग्रहण करने की बात लिखी है। इससे पहले एक वर्ष तक वे संघ के साथ रहे और इसके पूर्व ढाई वर्ष उन्होंने उपासक के रूप में व्यतीत किये थे। अर्थात् उन्होंने राज्याभि-षेक होने के (१० वर्ष में से १ + २½ = ३½ घटाने पर शेष ६॥ वर्ष) ६॥ वर्ष बाद जैनधर्म में प्रवेश किया था।

आगे चलकर फिर उनकी जीवनी के विषय में लिखा है कि [१२०] उन्होंने अपनी युवावस्था में भारत के समस्त राजाओं को करदाता बना दिया; और अष्टक के निकट आकर सिन्धु नदी पार करने के बाद अफगानिस्तान के मार्ग से ईरान, अरब और मिस्र आदि देशों [१२१] पर अधिकार किया और उनसे

---

(११९) श्रावक के बारह व्रत हैं। उनमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं। किन्तु इनमें शिक्षा व्रत ही ऐसे हैं जिनका पालन सांसारिक गृहस्थों से भलीभाँति हो सकता है। राज्य-कर्ता के लिए दुस्साध्य होने से सम्प्रति ने आठ ही व्रत ग्रहण किए थे।

(१२०) उपर्युक्त ग्रन्थ की टीका नं० ११७ देखिए।

(१२१) इसी लेख के पैरा नं० ७ और नं० २१ से मिलान कीजिए।

'कर' लिया। इसके बाद वापस लौट आए। उस समय आचार्य महाराज भी विहार करते हुए उज्जयिनी पधारे थे; अतः उनसे व्रतों की दीक्षा लेकर सम्यक्त्व-व्रतधारी श्रावक बने। ये बातें भी शिलालेखों के वर्णन से ज्यों की त्यों मिल जाती हैं।

(२८) पुरातत्त्व-विभाग के असि० डाइरेक्टर-जनरल स्व० पी० सी० बनर्जी लिखते हैं कि[१२२] ये सब शिलालेख, जिनमें यवन राजाओं के नाम का अंगुलि-निर्देश किया गया है, किसी भी रूप में सम्राट् अशोक (द्वितीय)[१२२] के बनाए हुए नहीं हो सकते। अधिक संभव तो उसके पौत्र राजा सम्प्रति के बनाए हुए होना ही है, जिसने जैन धर्म स्वीकार कर अपने पितामह का

---

(१२२) इंडि० ऐन्टि०, पृष्ठ ३२ पर उक्त महाशय प्रश्नावली उपस्थित करते हैं कि (१) यदि सभी शिलालेख महाराज अशोक के होते तो उनमें से किसी में भी क्यों उन्होंने अपना नाम नहीं लिखा? (२) प्रियदर्शिन् ने राज्याभिषेक के नौ वर्ष बाद व्रत लिए थे, ऐसी दशा में यदि उक्त वर्णन अशोक से सम्बन्ध रखता हो तो उसने राज्याभिषेक से छः मास पूर्व और गद्दी पर बैठने के चौथे वर्ष बौद्ध धर्म में प्रवेश किया होगा। (३) यदि दूसरा धर्म-परिवर्तन कहा जा सकता हो तो राजा प्रियदर्शिन् ने मगध संघयात्रा अपने राज्य के दसवें वर्ष की थी, जब कि मोग्गल-पुत्र के नेतृत्व में तीसरी बौद्ध-कौन्सिल अशोक-राज्य के सत्रहवें वर्ष हुई थी। इन सब कारणों से वे अशोक के शिलालेख नहीं हो सकते।

(१२२ अ) शिशुनाग-वंशी कालाशोक उर्फ महापद्म को प्रथम अशोक कहा जाता है, जिसका शासन-काल ई० पू० ४५४ से ४२६ तक था। देखिए शिशुनाग वंश की वंशावली विषयक मेरा लेख टीका १६-१७ पृ० २।

पदानुसरण करते हुए शिलालेख खुदवाए होंगे और चन्द्रगुप्त = चन्द्र—रक्षित तो केवल उसका उपनाम ही जान पड़ता है।

(२६) 'सम्राट् संप्रति' शीर्षक ग्रन्थ में लिखा है कि "सिन्धु नदी के उस पार[१२३] के उन सरदारों को जीतकर— जिन्हें सम्राट् अशोक भी अपने अधीन नहीं कर सका था— 'कर' वसूल किया था। जिस प्रकार अजातशत्रु राजा के अधीन १६००० करद राज्य थे, उसी प्रकार इनकी संख्या भी उतनी ही थी। इसी प्रकार जब वे दिग्विजय कर स्वदेश वापस लौटे तब सम्राट् अशोक के मुँह से ये उद्‌गार निकले कि "मेरे पितामह चन्द्रगुप्त तो केवल भारत के ही सम्राट् थे, किन्तु मेरा पौत्र संप्रति तो संसार भर का सम्राट् है।"

इन शब्दों से चन्द्रगुप्त, अशोक और प्रियदर्शिन, इन तीनों के राज्य-विस्तार-मापन का साधन मिल सकता है।

(३०) ऊपर के कुछ मुद्दों की चर्चा के परिणाम स्वरूप हमें यह विश्वास होता है कि संप्रति और प्रियदर्शिन् दो भिन्न व्यक्ति नहीं थे। ऐसी दशा में संप्रति का नाम प्रियदर्शिन् क्यों पड़ा, इस बात के जान लेने की भी आवश्यकता है। इसका इतिहास संक्षेप में इस प्रकार है—

"प्रियदर्शिन् के पिता कुणाल सम्राट् अशोक के लाड़िले पुत्र थे। साथ ही वे ज्येष्ठ पुत्र होने तथा अत्यन्त चालाक और उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करनेवाले दिखाई देने से "युवराज" नियुक्त कर दिये गये थे। महाराज अशोक ने उन्हें लालन-पालन के

---

(१२३) इसी लेख के पैरा नं० ७ तथा पैरा नं० २७ से मिलान कीजिए।

लिए अपने भाई के संरक्षण में अवन्ति (उज्जयिनी) में रख दिया था; क्योंकि अशोक को सदैव यह शंका बनी रहती थी कि ऐसा न हो कि पटरानी तिष्यरक्षिता कुमार कुणाल की जिन्दगी को खतरे में डाल दे या कोई षड्यन्त्र रचकर उसे मरवा डाले, जिससे उसके पुत्र महेन्द्र को गद्दी मिल सके। अन्त को अशोक का सन्देह यथार्थ ही सिद्धहुआ।

उस समय राजपरिवार की सारी चिट्ठी-पत्रियाँ विशेष दूतों (पत्र-वाहकों) के हाथ भेजी जाती थीं। जब कुमार कुणाल की अवस्था शासन-कार्य का अनुभव प्राप्त करने योग्य हुई तब अशोक ने सोचा कि कुमार को अब इस विषय की शिक्षा दी जा सके तो बड़ा अच्छा हो। इसी लिए सम्राट् अशोक ने अपने भाई को—जिसकी देख-रेख में कुमार कुणाल रखा गया था—विशेष पत्र लिखकर सूचित किया कि कुणाल को राजकाज की शिक्षा दी जाय।.......... यह पत्र अशोक ने लिखकर तो समाप्त कर दिया, किन्तु इसी बीच में कोई आवश्यक कार्य आजाने से उस पर सही-सिक्का और सील-मुहर करने से पहले ही उठकर वह बाहर चला गया। इधर दैवात् रानी तिष्यरक्षिता वहाँ आ पहुँची और उस खुले पत्र को देख कर चौंकी। उसने पत्र को उठाकर पढ़ा और मनचाहा दाँव अचानक हाथ लग जाने से उसने उससे लाभ उठा लिया। पास ही पड़ी हुई बुहारी की सींक उठाकर उसने अपनी आँख में फिराई और उसमें लगे हुए काजल से पत्र में जहाँ "अध्ययन"

शब्द लिखा था उसमें 'अ' के सिर पर अनुस्वार लगाकर* अध्ययन अर्थात् विद्याभ्यास कराने के बदले उसे 'अंध्ययन' अर्थात् अन्धा कर देने की आज्ञा बना दिया। वह इस आशय से कि यादि कुणाल अन्धा हो जायगा तो महेंद्र को राजगद्दी मिल सकेगी। इसके बाद वह तत्काल वहाँ से चली गई। उधर महाराज अशोक जैसे ही अपने कार्य से वापस लौटे कि उन्होंने जल्दी-जल्दी में उस पत्र को बिना फिर से पढ़े ही हस्ताक्षर करके, सील लगाकर, दूत के हाथ अवंतिका भेज दिया। दूत के पहुँचने पर उस पत्र का क्या परिणाम हो सकता था, इसकी कल्पना की जा सकती है। अवंतिका के दरबार में जैसे ही वह पव पढ़ा गया कि सबके चेहरों पर स्याही फिर गई। राजपुत्र के संरक्षण महाराज अशोक के भाई तो तत्काल समझ गए कि यह सब केवल राजकीय विवाद का ही परिणाम होना चाहिए। किन्तु अपने पिता के शाही फर्मान की तामील करने के लिये तत्काल ही राजकुमार कुणाल ने आग में तपकर लाल सुर्ख बने हुए लोहे के दो सरिए मँगाए और उन्हें अपने हाथों से ही अपनी आँखों में चुभा लिया; वह स्वयं अन्धा हो गया। दूत के वापस जाने पर जब यह समाचार पाटलिपुत्र पहुँचा तो सम्राट

---

* मूल वर्णन में "इदानीमधीयतां कुमारः" इस प्रकार का वर्णाक्य है; इसमें केवल 'म' पर अनुस्वार लगा देने से "इदावीमंधीयतां कुमारः" पढ़ा गया। अर्थात् पहले वाक्य के अनुसार "अब कुमार को अध्ययन कराया जावे" का आशय था, उसके बदले "अब कुमार को अन्धा कर दिया जाय" का आदेश कर दिया गया। अतएव पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये विवेकशील कुमार स्वयं ही अन्धा हो गया।

अशोक इसे सुनकर बड़े दुखी हुए और अपनी भूल पर पछताने लगे।

इधर कुणाल के अन्धा हो जाने से राज्यगद्दी पर उसका अधिकार न रह सका। वयस्क होने पर उसका विवाह भी कराया गया और अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये उसने संगीत कला का अभ्यास आरंभ किया। कुछ ही समय में वह संगीत-विशारद हो गया। ठीक उसी अवधि में उसके यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। अतएव अपनी धाय माता (धात्री) की सलाह से (जो जन्मदात्री माता की प्रसूतावस्था में स्वर्ग-वासिनी हो जाने से कुणाल के द्वारा जन्मदात्री माता के समान ही सम्मानित होती थी) उसने सम्राट् अशोक के पास जाकर अपने संगीत द्वारा उसे रिझाकर 'वर' माँगने का अवसर आने पर अपने बालकुमार के लिये काकिणी-राज्य माँगने का निश्चय किया और वह पाटलिपुत्र की ओर चल दिया। यथासमय उसने वहाँ पहुँचकर प्रथमतः अपने संगीत द्वारा सबके चित्त को हरण कर लिया। यह समाचार महाराज के कानों तक पहुँचा और उनके चित्त में संगीत सुनने की इच्छा हुई। किन्तु उस समय यह प्रथा थी कि राजपुरुष स्वयं किसी अन्धे व्यक्ति को अपने सामने बुलाकर उसका संगीत नहीं सुन सकता था। अत-एव उसे पर्दे की आड़ में बिठलाकर संगीत सुनने का निश्चय किया गया। गायक के मधुर स्वर एवं संगीत-ज्ञान से सम्राट् बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वर माँगने को कहा। फलतः उसने वर में "काकिणी" माँगी। महाराज समझे कि यह काँच का टुकड़ा माँगता है; क्योंकि इस शब्द का सामान्य अर्थ यही होता है। किन्तु जब वहाँ एकत्र समस्त राजपुरुषों और कर्मचारियों ने बतलाया कि वह राज्य (काकिणी का वास्तविक अर्थ)) माँग

रहा है, तब महाराज ने उससे पूछा कि "तुझे राज्य लेकर क्या करना है ?" इसके उत्तर में उसने एक मार्मिक गीत सुनाया, जिसका अर्थ यह था कि "मैं स्वयं महान् सम्राट् चन्द्रगुप्त के वंश का सीधा वारिस हूँ और अपने पुत्र कुमार के लिये राज्य की माँग करता हूँ।" इन शब्दों को सुनते ही महाराजा अशोक ने उस गायक के रूप में तत्काल अपने परम प्रिय पुत्र कुणाल को पहचान लिया, जिसने केवल पितृ-आज्ञा शिरोधार्य कर अपने हाथों से ही अन्धत्व स्वीकार कर लिया था। उसी क्षण पर्दा हटाकर, चिर-वियोग के पश्चात्, हर्षाश्रु-युक्त नेत्रों से उसने अपने पुत्र को गले लगा लिया और पूछा कि पुत्र की प्राप्ति कब हुई। इस पर कुणाल ने उत्तर दिया कि "संप्रति" [इस संस्कृत शब्द का अर्थ होता है, हाल ही में, अभी ही ही; क्योंकि उस समय कुमार की अवस्था केवल छः मास की ही थी]। अपने पौत्र के शुभ जन्म का सुखद समाचार सुनकर महाराज अशोक ऐसे हर्षोन्मत्त हुए कि (एक तो दीर्घकाल के पश्चात् पुत्र-वियोग दूर होने के कारण आनन्द ही आनन्द छा रहा था, उसमें भी फिर पौत्र-जन्म का शुभ समाचार पाने पर तो पूछना ही क्या था ?) उन्होंने वहीं प्रधान मन्त्री को आज्ञा दी कि शीघ्र ही अवन्ति जाकर एक राजवंशी अथवा राज्यकर्ता के योग्य समारोह के साथ बाल कुमार को ले आओ और मगधपति के रूप में उसे सिंहासन पर बिठाओ। (संप्रति का जन्म ई० पू० ३०४, जब संप्रति गद्दी पर बिठाया गया तब उसकी अवस्था दस मास की थी (ई० पू० ३०४) और उस शुभ प्रसंग के अनुसार महाराज ने कुमार का नाम प्रियदर्शिन्[१२३] रखा; क्योंकि उसके मुख के दर्शन मात्र से ही

(१२३ ब) इससे यह स्पष्ट होता है कि राजा प्रियदर्शिन् ने अपने

महाराज अशोक को आनन्द, सुख और हृदय-शल्य से मुक्ति प्राप्त हुई थी। कारण यह था कि उस समय तक वे अपने को ही कुणाल के अन्धत्व के लिये कारणीभूत मानकर सदा उद्विग्न रहते थे और इसीलिये कुणाल के साथ किए गए अन्याय का किसी अंश में परिमार्जन करने के उद्देश्य से उन्होंने उसके पुत्र को गद्दी पर बिठाया। इसी के साथ साथ उन्होंने यह कहकर अपने मन को सन्तुष्ट किया कि मैंने जो भूल की थी, उसका दंड भी मैंने अपने हाथों भोग लिया। उस समय से लेकर संप्रति कुमार के १५ वर्ष की अवस्था में पहुँचने (ई० पू० २६०-८६) तथा उनका राज्याभिषेक होने तक महाराजा अशोक ने उनके संरक्षक के रूप में शासन की व्यवस्था की।

पिता के प्रेम के चिह्नस्वरूप उनका रखा हुआ नाम भी सुन रखा है। इसी प्रकार राजकाज में अपने पितामह की गद्दी पर बैठने के स्मारकरूप उनका दिया हुआ नाम सुरक्षित रखकर बारंबार शिलालेखों में उसका उपयोग किया। इन दोनों बातों से इसके पुष्ट प्रमाण मिल जाते हैं कि वह अपने पिता और पितामह के प्रति कितना भक्तिभाव रखता था। जब राजगुरु ने राशि के हिसाब से राज्यगद्दी के अनुकूल उसका नाम 'दशरथ' बताया होगा, तो उसने कदाचित् अपने पितामह के अवसान के पश्चात् नागार्जुन की गुफा में खुदवाया होगा। यदि यह अनुमान यथार्थ हो तो नागार्जुन की गुफा का समय ई० पू० २०० के बाद माना जाता है। (देखिए इस लेख की पादटीका नं० १) किन्तु इस निर्णय पर पहुँचने के बाद विशेष अध्ययन करने पर यह मालूम हुआ है कि दशरथ भी अशोक का पौत्र था और प्रियदर्शिन् के अधीनस्थ उड़ीसा प्रान्त का सूबेदार था। सारांश, प्रियदर्शिन् और दशरथ ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे।

इससे प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है कि 'प्रियदर्शिन्' एक विशेष नाम है, विशेषण नहीं[१२४]। अभी तक कहीं भी यह पढ़ने में नहीं आया कि किसी पुरातत्त्व-विशारद ने प्रियदर्शिन् शब्द के विषय में—जो प्रत्येक शिलालेख में सर्वत्र प्रयुक्त हुआ है—इस बात की खोज की हो कि वह विशेष नाम है या महाराज अशोक का उपनाम।

(३१) अशोक के सभी शिलालेख सिकंदरशाह के समय[१२५] से लगभग ८० वर्ष बाद के सिद्ध होते हैं; और इस गणना से उनका समय ई० पू० ३२३—८०=ई० पू० २४३ वर्ष आता है। किन्तु महाराजा अशोक की मृत्यु तो ई० पू० २७० में ही हो चुकी थी, ऐसी दशा में वे शिलालेख अशोक के बनवाए हुए हो ही नहीं सकते। अतएव सम्राट् संप्रति का समय इस प्रकार निश्चित होता है:—

जन्म	ई० पू० ३०४ (पौष मास—जनवरी)	अवस्था ० मास
गद्दीनशानी	" ३०३—	" १० मास
राज्याभिषेक	" २८९ (कदाचित् अक्षयतृतीया अथवा विजयादशमी हो, क्योंकि ये शुभ मुहूर्त माने जाते हैं)	" १५ वर्ष

महाराजा संप्रति ने अपना राजगद्दी अवंति अर्थात् उज्जयिनी में स्थापित की थी। उसे इसके प्रति हार्दिक प्रेम था, क्योंकि उसकी जन्मभूमि यही थी और उसकी बाल्यावस्था भी यहीं बीती

(१२४) इंडियन ऐंटि०, पु० ३१, पृ० २३३ पर मि० पी० सी० मुकर्जी की टिप्पणी।

(१२५) देखिए, सर कनिंगहम् "बुक आफ एंशियंट इराज" का पृष्ठ २।

थी। इसी लिये उसने अपने धर्म का अवलंबन भी वहीं ग्रहण किया है। सारांश यह कि उसकी जिंदगी की समस्त सारभूत घटनाओं का मुख्य स्थान यहीं था। साथ ही राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर भी वे कुछ दीर्घ दृष्टिवाले माने जा सकते हैं। क्योंकि इतने बड़े साम्राज्य की व्यवस्था ठेठ पाटलिपुत्र या राजगृह जैसे एक कोने में पड़े हुए मगध देश के एक नगर में रहकर चलाने की अपेक्षा भारतवर्ष के हृदय रूप मध्यस्थल अवंति से[१२५] शासनसूत्र चलाना श्रेयस्कर और अधिक उचित कहा जा सकता है।

मेरी धारणा है कि इस समग्र लेख को पढ़कर पाठकों को नीचे लिखे मुद्दों के विषय में पूर्ण विश्वास हुआ होगा—

[प्रथम] महान् सिकन्दरशाह के समकालीन रूप में जिसका नाम ग्रीक ग्रंथकर्ताओं ने सेंड्रोकोट्स के रूप में बतलाया है, वे मगधपति चंद्रगुप्त नहीं वरन् मगधराज अशोक ही थे [इसी लेख का तीसरा विभाग शिलालेख का पैरा नं० १४ और ३१]

[द्वितीय] महाराजा अशोक, जो परम बौद्ध थे, उन्होंने नहीं वरन् सम्राट् प्रियदर्शिन् ने—जो एक परम जैनी थे—ये सारे शिलालेख खुदवाए थे[१२६]। [विभाग तीसरा पैरा नं० १, ६, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २२, २३, २६, २७ और २८ देखिए]

(१२५ अ) इस समय से अवंति नगरी का महत्त्व भारत की मुख्य राजधानी के रूप में विख्यात हो जाने के कारण इसे हस्तगत करके के लिये सभी राज्यकर्त्ता इच्छुक हो गए थे। अवंतिपति भी साधारणतः सबके अधिनायक माने जाने लगे थे।

(१२६) मस्की का शिलालेख (पृष्ठ ४१) देखिए।

[तृतीय] महाराजा अशोक और महाराजा प्रियदर्शिन ये दोनों ही भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। [विभाग तीसरा पैरा २, ५, ६, ७, ८, ११, १८, २४, २६, २७, २८, २६ और ३० देखिए]

[चतुर्थ] महाराज प्रियदर्शिन और जैन संप्रदाय के राजा संप्रति दोनों एक ही पुरुष थे। (विभाग तीसरा पैरा नं० ३, ५, १५, २५, २७, २८ और ३० देखिए) उनका दूसरा नाम[१२७] दशरथ भी हो सकता है (पैरा ११ देखिए)।

[पंचम] प्रियदर्शिन् शब्द विशेष नाम है, गुणवाचक विशेषण नहीं (विभाग तीसरा, पैरा नं० ३० देखिए)

विद्वानों के हृदय में जो दो-एक शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनका समाधान इस लेख को समाप्त करने से पूव कर देना उचित होगा, (१) यदि अशोक ही प्रियदर्शिन् न हो तो मक्सी के शिलालेख में अशोक शब्द स्पष्ट शब्दों में क्यों लिखा गया है ? (२) प्रियदर्शिन् बौद्धधर्म के यात्रास्थान लुम्बिनि और निग्लिवि नामक गाँवों में क्यों गया ? यदि वह स्वत; बौद्धधर्मी न होता तो वहाँ क्यों जाता ? इसी लिये प्रियदर्शिन् ही अशोक हो सकता है। इन दो शंकाओं का समाधान—[प्रथम शंका] यह निर्विवाद है कि मक्सी के शिलालेख में महाराजा अशोक के नाम का निर्देश हुआ है। किन्तु उसमें "देवाणां प्रिय अशोकस्य......" इस प्रकार के शब्द हैं। इसमें पहली दलील यह है कि 'देवाणां प्रिय'[१२७] शब्द तो प्रत्येक भक्तजन के लिये सम्बोधन में उपयोग

(१२७) पाद टीका नं० २ (पृ० ४५) देखिए।

(१२७ अ) सिलोन के राजा तिस्सा को संबोधन करते समय भी देवाणां प्रिय शब्द का उपयोग किया गया है। (देखिए दीपवंश ता०

किया जाता है अर्थात् प्रियदर्शिन् के सम्बन्ध में जिस प्रकार अशोक के सम्बन्ध में भी वह काम में लाया जा सकता है। किंतु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि प्रियदर्शिन् ही अशोक था। हाँ, यदि "देवाणां प्रिय प्रियदर्शिन् अशोक" इस प्रकार के शब्द होते तो वह अवश्य ही अशोक सिद्ध हो सकता था। दूसरी दलील यह है कि अशोकस्य शब्द षष्ठी विभक्ति में लिखकर...... जगह खाली छोड़ दी है। [इसके समर्थन में निम्न वर्णन उपयोगी हो सकता है। जिस प्रकार मैं "अशोस्य" शब्द को षठी विभक्ति के रूप में मानता हूँ, उसी प्रकार श्री राधाकुमुद मुकर्जी भी अपनी "अशोक" नामक पुस्तक के पृष्ठ १२ में लिखते हैं— "of His Gracious Majesty Asoka" ये शब्द उन्होंने अनुवाद करते समय लिखे हैं।] इससे जान पड़ता है कि कोई दूसरा शब्द और भी लिखना शेष होना चाहिए[१२८]। अथवा लिखा गया हो, 'अशोकस्स' षष्ठी विभक्ति के बदले यदि 'अशोकः' के रूप में प्रथमा विभक्ति का उपयोग किया जाता तो शंका का निराकरण हो जाता। [वे उपर्युक्त लेख के ही सम्बन्ध में आगे चलकर फिर कहते हैं कि—It indicates that it was drafted and incised by the local authorities in commemoration of the Emperor's visit and gifts to the place and out directly by the Emperor, like most other edicts

---

दे० रा० भंडारकर कृत अशोक, पृष्ठ ७)। इस तिस्सा का राज्य ई० पू० २४७ से २०७ तक था, जो अशोक (संप्रति) का समयवर्ती था (प्रिंसेप्स इंडि० एंटिक्विटीज पु० २, पृ० २६५)। उसका समय ई० पू० ३०७-२०७ दिया है। नोट नं० १ से मिलान कीजिए।

(१२८) कदाचित् "अशोकस्य पौत्र राजा प्रियदर्शनम्" लिखना उद्दिष्ट हो।

(अर्थात् महीयते शब्द के अर्थ में जो हेर-फेर समझ लिया जाता है, उसका कारण यहाँ दृष्टिगोचर होता है)] [दूसरी शंका] लुम्बिनि[१२९] शिलालेख में 'देवाणांप्रिय-प्रियदर्शिन्' शब्द है सही किन्तु लेख का अर्थ केवल इतना ही होता है कि प्रियदर्शिन राजा ने अपना राज्याभिषेक होने के २० वर्ष बाद इस स्थान को देखा। लेख में खुदे हुए **'महीयते'** का अर्थ पूजा करने के रूप में लेना उचित नहीं कहा जा सकता। अन्यथा worship of personalities का अर्थ क्या किया जा सकता है? सारांश, 'महीयते' शब्द का महिमा बढ़ाने या गाने के अर्थ में प्रयोग किया गया है, और ऐसा करने के लिये अनेक कारण हो सकते हैं। [साथ ही व्याकरण का यह एक अबाधित नियम* है कि विशेषण और विशेष्य दोनों के एक ही वचन और विभक्ति होने चाहिये। इस नियम के अनुसार यदि "देवाणां प्रिय" शब्द "अशोकस्स" का विशेषण होता तो वह इसके स्थान पर "देवाणां प्रियस्स अशोकस्स" के रूप में लिखा जाता। किन्तु जब **'देवाणां प्रिय'** शब्द प्रथमा विभक्ति में है तो इसका विशेष्य भी प्रथमा विभक्ति में ही होना चाहिए, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है और वे शब्द खाली छूटे हुए स्थान में थे, किन्तु इस समय घिसे हुए अथवा मिटाये हुए पाये जाते हैं। इस तरह मेरे उपर्युक्त अनुमान का समर्थन होता है।] सब से मुख्य संभावना तो इस बात की हो सकती है कि राजा प्रियदर्शिन् के राज्याभिषेक के १९ वर्ष

---

(१२९) दे० रा० भांडारकरकृत "अशोक" पृष्ठ ७४ देखिए।

* इस सूचना के लिये मैं दीवान बहादुर केशवलाल हर्षदराय ध्रुव का कृतज्ञ हूँ।

बाद [ई० पू० २८६—१६ = ई० पू० २७० में] अशोक की मृत्यु हुई; अतः वह इसके एक वर्ष बाद अपने पूज्य पितामह की सांवत्सरिक क्रिया करने के लिये उनके धर्म-तीर्थस्थान में गया होगा। [आज भी हिन्दू लोगों में यही प्रथा प्रचलित है।] दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार उसने अपने राज्य के अन्य स्थानों को देखा, उसी प्रकार वह इस स्थान में में भी गया हो, तीसरा कारण राज्यकर्त्ता के नाते अपनी प्रजा के धर्मस्थानों का सन्मान करने के लिए ही वहाँ गया हो; अथवा वह कहाँ तक धर्म-सहिष्णुता दिखला सकता है; अथवा किसी प्रजाप्रिय सम्राट् को किस प्रकार बरतना चाहिये, यह बतलाने के लिये वहाँ गया हो। चौथे, जिस तरह अनेक हिंदू राजा स्वयं अन्य धर्मानुयायी होते हुए भी विभिन्न धर्म-मन्दिरों को बनवाते रहे हैं और उनके इस विषय के उल्लेख इतिहास में में पाये जाते हैं, उसी प्रकार राजपिता के नाते प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव दिखलाने का भी उद्देश्य हो।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों शंकाओं का समाधान करने के बाद अन्त में पाठकों से निवेदन है कि मेरे बतलाए हुए प्रमाणों से यदि वे सहमत हों तो स्वाभाविक रीति से उन्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अब तक जो महत्ता या कीर्ति सम्राट् अशोक को दी जाती रही है, वह सम्राट् सम्प्रति को दी जानी चाहिए। इसी प्रकार शिलालेखों (चट्टानों या स्तंभ पर खुदे हुए) ने समग्र जगत् की सामान्य जनता पर सामाजिक, राजनीतिक या क्षेत्रानुरूप जो प्रभाव डाला है, वह बौद्ध धर्म के कारण नहीं, वरन् जैनधर्म के कारण ही है, यह मानना पड़ेगा। इसी लिये इस विषय का विस्तृत प्रचार कर जैनधर्म के साथ किए जाने वाले अन्याय को मिटाने के निमित्त उन्हें आगे बढ़ना चाहिए।

सर्वमंगल मांगल्यं सर्वकल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

परिशिष्ट (अ)

(पैराग्राफ नं० २ और २ से संबंधित फुटनोट[1] के अनुसार ।

सुदर्शन तालाब की प्रशस्ति का अनुवाद[2] जिस रूप में किया गया है, उसके अनुसार प्रो० हुल्ट्श ने[3] स्वयं यशकीर्ति पूर्ण कलश क्षत्रप रुद्रदामन् के सिर पर चढ़ाया है; किन्तु फिर भी मुझे सम्मानपूर्वक उनसे भिन्न मत प्रकट करना पड़ता है। अर्थात् मैं उस कीर्तिकलश को सम्राट् सम्प्रति के सिर पर चढ़ाना चाहता हूँ। और इसके लिये अपनी इन दलीलों को उपस्थित करता हूँ ।

(१) नवीं पंक्ति में—"विस्तृत" और "णा आगर्भात् प्रभृत्य अभिहत समुदित राजलक्ष्मी" इन दो वाक्यों के बीच बहुत ज्यादा खाली जगह छूटी हुई है और इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार किया गया है कि, "(वह) जब से गर्भ में आया[4] तब से राज्य-ऋद्धि में अबाधित रूप से वृद्धि होती रही थी।"

हम ऐतिहासिक प्रमाणों से इस बात को भली भाँति जानते हैं। रुद्रदामन् के पितामह चाष्टाण महाक्षत्रप ने जिन जिन देशों

---

(१) पैरा नं० १५ का 'ब' ।
(२) शिलालेखादि वाले अंश का पैरा नं० २ देखिए ।
(३) एपिग्रा० इण्डिका, पु० ८, पृ० ३२ और उसके बाद ।
(४) देखिए टिप्पणी नं० ६४ ।

पर विजय प्राप्त की थी, उसका बहुत बड़ा भाग उसके पिता जयदाम ने गँवा दिया था[५]। अर्थात् रुद्रदामन् जब गर्भ में था तब और इसके बाद इसकी बाल्यावस्था में उसके पिता की राज्य-ऋद्धि और वैभव की घटती के दिन थे। इसलिये उपर्युक्त वर्णन रुद्रदामन के विषय में प्रयुक्त नहीं हो सकता। यदि यह माना जाय कि रुद्रदामन् के गर्भ में आने, उसका जन्म होने और बाल्यावस्था समाप्त होने तक का समय महाक्षत्रप चाष्टाण की उत्तरोत्तर उन्नति का समय था, तो भी यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि वृद्धि का ज्वर आना रुक कर उसके पिता के समय उतार का आरम्भ हो गया था। सारांश उपर्युक्त श्लाघात्मक वाक्य सर्वांश में रुद्रदामन् के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता; किन्तु सम्राट् संप्रति के लिए वह पूरी तरह लागू हो सकता है।

साथ ही यह वाक्य सम्राट् संप्रति के लिए प्रयुक्त करने का एक खास कारण भी है। वह यह कि उस शिलालेख की आठवीं पंक्ति में मौर्य्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त और उसके बाद सम्राट् अशोक का उल्लेख है। इसके बाद का स्थान खाली छूटा हुआ है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि एक के बाद दूसरे सम्राट् के गद्दी पर बैठने का वर्णन करने की प्रथा प्रचलित होने से सम्राट् अशोक के बाद गद्दी पर बैठनेवाले से संबन्धित ही उक्त वर्णन हो सकता है।

सम्राट् प्रियदर्शिन् जिस प्रकार अन्य प्रान्तों पर शासन करने के लिये अपने राज्य-परिवार के खास खास व्यक्तियों

---

(५) ज० बो० ब्रां० रा० ए० सो० की नई आवृत्ति पुस्तक, पृ० ७२ और आगे।

को[६] सूबा के रूप में नियुक्त करता था, उसी प्रकार सौराष्ट्र प्रान्त (काठियावाड़) पर शालिशुक[७] नाम के पारिवारिक जन को नियुक्त किया था, और उसकी देख-रेख में ही उसने उक्त तालाब की दुरुस्ती[८] कराई थी। इसी लिए राजा रुद्रदामन् ने इन सारे विशेषणों[९] का प्रयोग सम्राट् प्रियदर्शिन को लक्ष्य करके ही किया है; और अपने सुकृत्यों की प्रशंसा के लिए केवल तुलना के स्वरूप में उन्हीं को शिलालेखों के अन्तिम भाग पर विहंगम-दृष्टि से ही खुदवा दिया है। क्योंकि वह खुद

अनुवादक की टिप्पणिएँ:—

(६) अशोक के लेख—प्रो० हुल्ट्श कृत Pre XXXVII Seg. 'अशोक-चरित्र' ग० व० सो० कृत पृ० ४७-४६, Bhandarker, Asoka, PP. 49-59.

[एक] नेपाल में देवपाल को (विंसेंट स्मिथ कृत तीसरी आवृत्ति पृ० १६६-७) [दो] मगध में दशरथ को (देखिए नागार्जुनी गुफा-लेख) [तीन] कलिंग में तोसलीपुत्त को [चार] सत्यपुत्र को [पाँच] केरलपुत्र को [छः] उज्जयिनी में सूबा बनाया था। इनमें से प्रथम चार का तो उल्लेख इसी रूप में किया है, शेष दो को दूसरे रूप में बतलाया गया है।

(७) देखिए बुद्धिप्रकाश, पुस्तक ७६, अङ्क ३, पृ० ६२ में, जहाँ कि गर्गसंहिता पर विवेचन किया गया है। विंसेंट स्मिथ कृत अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, तीसरी आवृत्ति, पृ० २०४, टीका नं० १ पृ० १६४, टीका नं० १, पृ० २८८ तथा पृ० २०७ नं १।

(८) देखिए इसी लेख में की तीस दलीलों में से नं० २ और ३।

(९) परिशिष्ट की दलील नं० १-२-३ में प्रयुक्त समस्त विशेषण तथा तीस दलीलों में से नं० २-३ और ४ के साथ तुलना कीजिए।

जानता था कि कहाँ सार्वभौम भारतीय मौर्य्यवंशी सम्राट् और कहाँ वह केवल पश्चिम भारत के एक छोटे से भाग का राजा। दोनों की तुलना हो ही कैसे सकती है ? इस बात की विशेष पुष्टि इससे हो सकती है, कि वह तालाब उस समय श्री गिरनारजी की तलहटी में खुदवाया गया था और शिलालेख भी वहीं[१०] लगाया गया था जहाँ कि उस तालाब के स्मरण चिह्न रूप उसकी पाल (दीवार) का कुछ भाग और उसमें मिलनेवाली दो नदियों के[११] प्रवाह मार्ग रूप कगारे हमें आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। सारांश यह कि उस समय श्री गिरनारजी की तलहटी वहीं तक फैली हुई थी जहाँ कि आज उक्त शिलालेख मिलता है।

(२) उसी नवीं पंक्ति में यह भी लिखा हुआ है कि "युद्ध के अतिरिक्त[१२] प्राणान्त तक[१३] भी मनुष्य-वध न करने की उसने प्रतिज्ञा की थी।"

---

(१०) राजा प्रियदर्शिन् ने शिलालेख क्यों खुदवाए यह जानने के लिये महोदय व्यास कृत सम्राट् प्रियदर्शिन् की जीवनी नाम की पुस्तक देखिए।

(११) लेख में उन दोनों के नाम सुवर्ण सिकता और परमाशिनी लिखे गए हैं, जिनका अपभ्रंश होकर आज वे सोनरख और पलासिसो के नाम से पहचाने जाते हैं।

(१२) वह स्वयं राजा होने के कारण इस बात को जानता था कि मुझे युद्धभूमि में उतरना ही पड़ेगा; इसी लिये उसने इस प्रकार के आगार-अपवाद के साथ व्रत धारण किये होंगे। अथवा कलिङ्ग देश जीतने के बाद उसने जो आठ व्रत लिये (नीचे की टीका १३ देखिए) वे इसकी याद दिलाते हैं।

(१३) टिप्पणी नं० ११९ तथा अहिंसा का शिलालेख नं० १ मिलान कीजिए।

यह वाक्य ही रुद्रदामन् की अपेक्षा सम्राट् संप्रति के लिये पूर्ण रूप से उपयुक्त हो सकता है; क्योंकि शिलालेख नं० ८ के द्वारा हम संप्रति राजा के जीवन-सिद्धान्तों से[१४] परिचित हो चुके हैं कि उसने कलिङ्ग देश जीतने के लिये जो चढ़ाई की थी उसमें अगणित संख्या में मनुष्यों की हत्या हुई देखकर उसका हृदय काँप उठा था, और इसी कारण उसने तत्काल प्रतिज्ञा की थी। जब हम क्षत्रप रुद्रदामन् के जीवन में कहीं भी इस बात का इशारा तक नहीं पाते, और शकों के समान घातक एवं क्रूर स्वभाव वाली अनार्य जाति के किसी व्यक्ति के हृदय में (जिस जाति का राजा रुद्रदामन् था) इस प्रकार की दया उत्पन्न होने की कल्पना तक नहीं की जा सकती।

(३) आगे चलकर यह निर्देश किया गया है कि पूर्व तथा पश्चिम आकारावन्ति[१५], अनूपदेश[१६], आनर्त[१७], सुराष्ट्र,

---

(१४) मुख्य लेख के शिलालेख वाले अंश के पैरा नं० ७–२७ आदि देखिए।

(१५) इन शब्दों को अलग करने पर आकर = खानि + अवन्ति उज्जयिनी वाला प्रदेश भी इस अर्थ से ठीक तरह नहीं मिलता। जान पड़ता है कि उस प्रदेश के राजनीतिक दृष्टि से दो विभाग किये गये हों। क्योंकि पूर्व और पश्चिम के रूप में आज भी कई प्रदेशों के इस तरह के विभाग दिखाई देते हैं।

(१६) आधुनिक बरार प्रान्त का दक्षिण भाग (रा० ए० सो० वें०, पु० ७, पृ० ३४१)

(१७) कंबोज, सिन्ध और यवन प्रान्तों के साथ उसका वर्णन किए जाने से (देखिए रा० ए० सो० वें०, पु० ७, पृ० ३४१, टिप्पणी

श्वभ्र[18], मरु, कच्छ, सिन्धु, सौवीर[19], कुकुर[20], अपरान्त, निषाद[21] आदि देश उसने अपने बाहुबल से अधिकृत कर लिए थे[22]।

क्षत्रप रुद्रदामन् ने अपने बाहुबल से अनेक देशों को जीत लिया था, इस बात को यदि हम मान लें (जब कि हमारी इस

तथा एशिया रिसर्चेज पु० ७, पृ० ३३९) वह प्रान्त भी आधुनिक पंजाब का सीमाप्रान्त होने विषयक अनुमान किया जा सकता है। यदि आनर्त देश से कुछ भी सम्बन्ध हो तो शत्रुञ्जयप्रकाश (भावनगर मुद्रित १९२९, पृ० १ टि० २) में उसका दूसरा नाम बड़नगर बतलाया गया है, जो कि उत्तर गुजरात का एक प्रमुख नगर है। आनर्त = गुजरात और मालवा का कुछ भाग (देखिए नन्दलाल डे कृत Ant. Geo., India.)

(१८) इसका आधुनिक नाम और स्थान अज्ञात हैं।

(१९) आधुनिक कच्छ के ईशान कोण में तथा वर्तमान राजपूताना के आग्नेय तथा पश्चिम भाग वाला प्रदेश।

(२०) बनारस नगर वाला भाग (रा० ए० सो० ए०, पु० पृ० ३४१, टिप्पणी)

(२१) राजपूताना के जयपुर के कछवाहे अंबर राज्य के रूप में पहचाने जाते हैं। और अंबर के क्षत्रियों की निषद (आधुनिक निबुर) देश में बसनेवाले असल क्षत्रियों की यह शाखा है। क्षत्रियों में विख्यात अभागे नल दमयन्ती का नाम हमारे पूर्ण परिचय का और बिख्यात है। (टॉड राजस्थान, पु० १, पृ० १४०)।

(२२) सुदर्शन तालाब के इस शिलालेख के अतिरिक्त दूसरा ऐसा कोई साधन हमारे पास नहीं है, जिससे कि रुद्रदामन् की सत्ता के विशेष विस्तृत होने की बात जानी जा सके।

जानकारी का आधार मुख्यतः इस सुदर्शन तालाब का संशयात्मक लेख ही है) तो भी यह तो निश्चय ही है कि इतने विस्तृत प्रदेश पर उसने कभी सत्ता स्थापित ही नहीं की थी। किंतु सम्राट् संप्रति के दिग्विजय में[२३] इन सब देशों का समावेश हो जाता है।

विशेष में सम्राट् संप्रति का यह वर्णन भी देखने में आता है कि वे श्रीसंघ के साथ[२४] प्रति वर्ष श्री गिरनाजी की यात्रा के लिये जाते और यह सुदर्शन तालाब उस गिरिनारजी की तलहटी में बना हुआ होने से उसे दुरुस्त कराने की ओर यदि प्रजाजन ने उनका ध्यान आकर्षित किया हो और अपनी लोक-कल्याण एवं प्रजाहित[२५] के कार्य करने विषयक स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं उत्साहपूर्ण भावना के अनुसार यदि उन्होंने ऐसा किया भी हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। इसी प्रकार रुद्रदामन् और संप्रति के समय के बीच लगभग तीन सौ वर्ष का अन्तर पाया जाता है,[२६] अतएव यदि जनता में दंतकथा रूप से प्रचलित

---

(२३) देखिए—पैरा २७ (पृ० ३६) और २६ (पृ० ४१) मिलान कीजिए पैरा नं० ७।

(२४) देखिए शिलालेख नं० ८ (ऊपर के पैराग्राफ १५ ग, पैराग्राफ २७) परिशिष्ट पर्व भावनगर मुद्रित।

(२५) उसने हजारों गाँवों में कुए, तालाब, बावड़ी, धर्मशालाएँ, दानशालाएँ, जैनमंदिर आदि बनवाए हैं। भावनगर मुद्रित परिशिष्ट पर्व अनुवाद पृ० २१०–८ और आगे बतलाए हुए वर्णन से तिलान कीजिए।

(२६) सम्राट् संप्रति की मृत्यु ई० पू० २३० के आसपास है, जब कि रुद्रदामन् का अस्तित्व ई० स० १५० में था।

इस प्रकार के लोक-कल्याण के कार्यों का वर्णन एक से दूसरे के कानों तक पहुँचता रहा हो, जिससे कि इस प्रकार के मौर्य-वंशी महान् सम्राट् के सत्कार्यों का उल्लेख करने की इच्छा राजा रुद्रादामन् को हुई हो, और इसी लिये एक के बाद दूसरे सम्राट् के कार्यों का उल्लेख किया हो और उनकी पंक्ति में अपना नाम भी गौरवान्वित करने के लिये यह दरसाया हो कि इन उपर्युक्त सम्राटों की तरह, जिन्होंने अपने बाहुबल से अन्य देशों पर विजय प्राप्त की थी, मैं भी हूँ, जिसने अमुक-अमुक कार्य किए हैं।···यदि इस प्रकार अपने कार्यों की मूक महिमा बढ़ाने का उद्देश्य न होता तो राजा रुद्रदामन् ने अपने कार्य दूसरे ही शिलालेखों पर खुदवाए होते। किन्तु उन्हें एक ही शिलाखंड पर खुदवाने से उनके साथ तुलना करने के अनुमानित उद्देश्य की पुष्टि होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सारी परिस्थिति का अवलोकन करने से सहज ही यह अनुमान हो सकता है कि नवीं और दसवीं पंक्ति के बीच जो भाग लिखे बिना खाली रह गया है, उसमें अवश्य राजा प्रियदर्शिन् का ही नाम होना चाहिए, क्योंकि सम्राट् अशोक के बाद वे तत्काल ही राज्यारूढ़ हुए थे, और यह सारा वर्णन उसी के जीवन के लिये शोभारूप एवं सर्वथा उपयुक्त हो सकता है। इसी प्रकार प्रशंसारूप जो वाक्य उसमें बढ़ाए गए हैं, यथा—"जब से वह गर्भ में आया, तब से राज्य-ऋद्धि में अवधित वृद्धि होती रही"—"रणसंग्राम के अतिरिक्त प्राणांत होने तक भी मनुष्य-वध न करने की प्रतिज्ञा की थी" और इस प्रकार के प्रदेश[२७] अपने बाहुबल से जिसने जीत

(२७) सम्राट् प्रियदर्शिन् जिन-जिन प्रदेशों के साथ राजनैतिक संबंध रखता था, उन सबकी तुलना कीजिए। (शिलालेख नं० २

लिए थे—ये सब राजा प्रियदर्शिन् के लिये ही यशोगानरूप विशेषण हैं। और ये सब उनके नाम के साथ ही समय रूप से लागू हो सकते हैं, अन्य किसी भी राजा के लिये वे सम्यक् रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकते।

(पूर्ति लेख)

पदच्युत महाराजा अशोक के लेख की पूर्ति

(१) रॉयल एशियाटिक सोसायटी पु० १८८७ पृ० १७५ की टिप्पणी में लिखा है कि—"The testimony of Megarsthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to tne devotional teachings of the Shramanas as opposed to the doctrines of the Brahmins."

इस वाक्य से दो बातें सिद्ध हो सकती हैं। प्रथम तो यह कि चन्द्रगुप्त प्रथमतः ब्राह्मण धर्म पालता रहा होगा, किन्तु पीछे से उसने जैनधर्म को स्वीकार[२८] किया होगा; दूसरी बात यह कि मेगेस्थेनीज के समकालीन रूप में तो नहीं, किन्तु पुरोगामी-रूप में चन्द्रगुप्त का समय होगा। किन्तु ग्रीक लेखकों ने मेगेस्थेनीज को चन्द्रगुप्त उर्फ सेंड्रोकोट्स के दरबार में एलची होने की बात लिखी है। सारांश यह कि ग्रीक लेखकों का

तथा १३ टिप्पणी नं० ६ पैराग्राफ ७ १०, दे० रा० भांडारकर कृत "अशोक" पृष्ठ १५६—१५८ इण्डि० एंटि० १९११ पृ० ११ के ऊपर पृष्ठ १७–१८ पैरा २७ आदि देखिए।

(२८) श्रवणबेलगोला का शिलालेख देखिए।

सेंड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त नहीं, क्योंकि वह ऐंड्रोकोट्स का पुरोगामी है।

(२) एक ओर यह लिखा गया है कि[२९] ई० पू० ३०४–५ में *सेल्युकस ने अपनी पुत्री को सेंड्रोकोट्स* के साथ व्याह दिया और दूसरी ओर यह बतलाया गया है कि सेंड्रोकोट्स स्वयं ई० पू० ३३० में गद्दी पर बैठा था। सारांश, सेंड्रोकोट्स का विवाह अपने शासन के ३३०–३०४ वें वर्ष सेल्युकस की पुत्री के साथ हुआ था। ऐसी दशा में यदि सेंड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त ही हो तो उस चन्द्रगुप्त का विवाह अपने शासन के २६ वें वर्ष हुआ कहा जायगा, किन्तु चन्द्रगुप्त का तो राज्य ही सब लोगों के मतानुसार २४ वर्ष का माना जाता है। तब क्या उसने अपनी मृत्यु के बाद उस कुमारी से विवाह किया होगा? सारांश, सेंड्रोकोट्स किसी प्रकार भी चन्द्रगुप्त नहीं हो सकता।

(३) पाली भाषा के प्रसिद्ध जानकार प्रो० कॅर्न लिखते हैं कि[३०] सम्राट् अशोक ने—वह स्वयं किस मत का अनुयायी था,

---

(२९) Prof. Hultzsch कृत अशोक पुस्तक प्रथम पृ० XXXV; Seleucus gave his daughter to Sendrocattus in B. C. 304 and this Sendrocattus came to the throne in. B. C. 330 (*i.e.* Marriage took place in the 26th year of his reign).

(३०) रा० ए० सो० १८८७ पृ० १८७ At fitting time and place, Asoka makes mention in a most becoming manner of the doctrine he had embraced but nothing of the Buddhist spirit can be discovered in his State policy.

इसे बड़ी सभ्य और शिष्ट भाषा में बतलाया अवश्य है; किन्तु उसकी राजनीति में कहीं भी उक्त पंथ—बौद्धमत—के सूत्रानुसार आचरण होता दिखाई नहीं देता ।

इन शब्दों से स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि शिलालेखों का निर्माता बौद्धधर्मी कदापि नहीं हो सकता ।

(४) यह निष्कर्ष निकलता है कि[३१] फाहियान और युआनच्वांग नाम के जो दो चीनी-यात्री भारतवर्ष में आए थे, उनके किए हुए वर्णनों में इन शिलालेखों की चर्चा अवश्य है, किन्तु फिर भी यह कहीं भी नहीं लिखा गया है कि ये शिलालेख अशोक के खुदवाए हुए हैं । केवल इतनी बात उन्होंने अवश्य लिखी है कि ये लेख प्राचीन हैं और इनमें लिखी हुई बातें इनसे पहले की हैं ।

ऐसी दशा में बौद्ध-धर्मी यात्रियों से यह बात अविदित हो सकती है कि "उन्हीं के स्वधर्मी सम्राट् अशोक के खुदवाए हुए ये सब शिलालेख हैं ।" इन शब्दों से भी भली भाँति सिद्ध होता है कि इन शिलालेखों से सम्राट् अशोक का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता ।

---

(३१) Radha Kumood Moookerjee, p. 14 f. n. 3, It should be noted that neither of these Chinese pilgrims (Fe-hian and Youan chwang) has described the inscriptions they had noticed as the inscriptions of Asoka. Thay generally describe them as belonging to and recording events of earlier times.

(५) दिव्यदान[32] के पृष्ठ ४३० में स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि सम्प्रति, कुणाल का पुत्र था। इसी प्रकार मुख्य लेख में भी हमने यही सिद्ध किया है कि अशोक के बाद गद्दी पर बैठने वाला प्रियदर्शिन् ही सम्प्रति था। इससे भी यही सिद्ध होता है कि अशोक के पश्चात् उसके पुत्र कुणाल का पुत्र ही गद्दी पर बैठा था। पुराणों में जो कुणाल का नाम राज-कर्ता के रूप में लिखा गया है, वह यथार्थ नहीं।

(६) पालिभाषा के अधिकार-युक्त अध्ययनकर्ता प्रो० विल्सन साहब लिखते हैं कि[33] "प्राणियों का वध-रोकने विषयक उसके आर्डिनेंस (विशेष कानून) बौद्ध धर्म की अपेक्षा उसके प्रतिस्पर्धी जैनधर्म के सिद्धांतों से अधिक मेल खाते हैं।

इस प्रकार एक समर्थ और गहरे अभ्यासी के शब्दों से भी यही सिद्ध होता है कि शिलालेखों की लिपि जैनधर्मानुयायी की ही है और बौद्धधर्म से उसका कोई खास सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

(७) इसी प्रकार बौद्ध धर्म के दूसरे एक विशेषज्ञ रेव्हरेंड एस० बिल, जोर देकर बतलाते हैं कि[34] ग्रीक पुस्तकों में बौद्ध-

(३२) Radha Kumood Mookerjee, Asoka p. 8. Ind. Ant. 1914 p. 168 f. n. 67.

(३३) देखिए ज० रा० ए० सा० १८८७ पृ० २७५, His ordinances concerning sparing of animal life agree much more closely with the ideas of the heretical Jains than those of the Buddhists.

(३४) ज० रा० ए० सो० पु० १६ पृ० ४२०, Rev. S. Beal emphatically dictates, "I doubt very much

धर्म के विषय में कुछ भी उल्लेख हो, ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता। सारांश यह कि, ग्रीक लोगों की किसी भी पुस्तक में बौद्धधर्म के विषय में नाममात्र के लिये भी उल्लेख नहीं पाया जाता। ऐसी दशा में बौद्धधर्म के उपदेशकों का वहाँ जाना और अपने धर्म का प्रचार करना तो सम्भव ही कैसे है ?

(८) उपर्युक्त पुस्तक के ही पृष्ठ १९९ में आगे जाते हुए लिखा है[३५] कि "स्तम्भ लेखों में असहाय एवं दुखी प्राणियों के प्रति एवं द्विपद तथा चतुष्पद के प्रति और वायु-आश्रित जीव-जन्तु तथा जलचर जीवों के प्रति जो दया, इत्यादि........" इस प्रकार सूक्ष्म दया का जिन शब्दों में विवेचन किया गया है, वे जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म या सम्प्रदाय के नहीं हो सकते।

(९) भांडारकर महोदय लिखते हैं कि[३६] स्तंभलेख नं० ३ में तो पाँच आश्रव बतलाए हैं, किन्तु बौद्धधर्म में तो केवल तीन ही हैं जब कि बुलहर साहब ने इन पाँच आश्रवों के बदले जैनधर्म के पाँच अणुव्रत[३७] होने के विषय में अपना मत प्रकट किया है।

---

whether there is any deference to Buddhism in the Greek accounts." (R. A. S. Vol. p. 191.

(३५) ज० रा० ए० सो० पु० ९ पृष्ठ १९९ Pillar Edicts:— "Towards the poor an afflicted, towards the hipeds and quadrapeds, towards the fouls of the air and things that move in the water."

(३६) दे० रा० भांडारकर कृत अशोक पृ० १२७

(३७) उन पाँच अणुव्रतों के नाम—(१) प्राणातिपात विरमण

(१०) बौद्ध एवं अन्य धर्म-ग्रन्थ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सम्राट् अशोक ने अपने शासनकाल के छब्बीसवें वर्ष यवन-बालिका से विवाह किया था।[३८] । साथ ही इतिहास के पृष्ठों में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि अलेकजेंडर दि ग्रेट के पश्चात् गद्दी पर बैठनेवाले उसके सरदार सेल्युकस निकोटर को ई० पू० ३०४[३९] में मगधपति सम्राट् अशोक के साथ सुलह करने के लिए वाध्य होना पड़ा[४०] था। उस सन्धि में दो मुख्य शर्तें[४१] ये थीं कि सेल्युकस सिन्धु नदी के उस पार पश्चिम के पाँच प्रान्त मगधपति को सौंप दे तथा अपनी राजकुमारी का मगधपति के साथ विवाह करे और इसके बदले मगधपति सेना के सामान से सजे हुए पाँच सौ हाथी सेल्युकस को दें।

ये दोनों बातें सम्राट् अशोक से ही सम्बन्धित हो सकती हैं। सम्राट् चन्द्रगुप्त (या सेंड्रोकोटस) से नहीं; क्योंकि अशोक

वृत (२) मृषावाद विरमण वृत (३) अदत्तादान विरमण वृत (४) मैथुन विरमण वृत (५) परिग्रह विरमण वृत।

(३८) अ० हि० इं० स्मिथ कृत तीसरी आवृत्ति पृष्ठ ११९, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया पृष्ठ ४३१, ४७२।

(३९) टीका नं० ४ के अतिरिक्त अ० हि० इं०, विंसेंट स्मिथकृत पृष्ठ १९६—७।

(४०) टीका नं० ४ के प्रमाण ही यहाँ लागू समझिए।

(४१) विंसेंट स्मिथकृत अर्ली हिस्ट्री आफ इन्डिया की तीसरी आवृत्ति पृष्ठ ११९। केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया पृष्ठ ४३१ तथा ४७२।

ई० पू० ३३० में ही गद्दी पर बैठा था।[४२] अतएव इस हिसाब से उसका छब्बीसवाँ वर्ष ३३०—२६=ई० पू० ३०४ होता है तथा यवनकुमारी से विवाह करने की बात का आशय यह है कि सन्धि-पत्र की शर्त के अनुसार सेल्युकस ने अपनी पुत्री हेलेना का विवाह सम्राट् अशोक के साथ किया था। इससे भी यही निर्विवाद सिद्ध होता है कि सेंड्रेकोट्स चन्द्रगुप्त नहीं वरन् अशोक ही था।

(११) अब तक जितने भी स्तंभलेख उपलब्ध हुए हैं और जिन्हें ऐतिहासिकों एवं पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने सम्राट् अशोक को बौद्धधर्म निरूपणकर्त्ता बतलाया है, उन प्रत्येक के सिरे पर जो सिंह बन हुआ है उसका आशय क्या होना चाहिए? क्या भगवान् के खुद के अथवा उनके धर्म के किसी सिद्धान्त के साथ इस सिंह की आकृति का कोई संबंध बतलाया जा सकता है? नहीं उसके बदले जैनधर्म के कुछ सिद्धान्तों की गहराई के साथ, छानबीन की जाय तो उनमें सिंह एक श्रेष्ठ प्राणी सिद्ध होगा। इसी प्रकार कितने ही जिनालयों[४३] पर मांगलिक चिह्न के रूप में सिंह की ही आकृति बनाई देखने में आती है। इतना ही नहीं वरन् यह एक विश्वविख्यात वार्ता है कि जिन भगवान् महावीर के प्ररूपित जैनधर्म का सम्राट् प्रियदर्शिन् परम भक्त था उन

---

(४२) सम्राट् अशोक विषयक कालनिर्णय के निष्कर्ष 'अ' तथा पैराग्राफ नं० ४–५–६ और उनकी टीकाएँ।

(४३) नारदपुरी आदि कई नगरों के मंदिर सम्राट् संप्रति के ही बनवाए हुए हैं, जो आज भी उनके कीर्तिगान द्वारा संसार को आश्चर्य में डाल देते हैं। उन पर भी अनेक सिंह की आकृतियाँ बनी हुई देखी जाती हैं।

भगवान् महावीर को पहचानने के लिये लांछन (चिह्न)[४४] सिंह ही है और इसी लिये भगवान् महावीर के जीवन-चरित्र के साथ संकलित होने वाली कितनी ही घटनाओं के निर्देश के लिये सम्राट् ने उन-उन स्थानों में ये सब स्तंभलेख खड़े करवाए हैं, और उनकी पहचान के लिये ही उन सब स्तंभों पर उन्होंने सिंह की आकृति बनवाई है।

इन सब विवरणों और प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि सम्राट् अशोक के बतलाए जानेवाले सभी शिलालेख और स्तंभलेख सम्राट् अशोक के नहीं वरन् सम्राट् संप्रति के खुदवाए हुए हैं और ये सब जैनधर्म से संबंध रखते हैं।

---

(४४) प्रचलित अवसर्पिणी काल में हुए चौबीसों तीर्थङ्करों के नाम तथा उनकी पहचान करानेवाले लांछनों को देखिए।

ऐतिहासिक अमूल्य पुस्तकें ?

(१) **जैनजाति महोदय प्रथम खण्ड सचित्र**—इसमें जैनधर्म एवं जैन-जातियों का विस्तृत इतिहास गहरी सोध एवं खोज के साथ संकलित किया गया है। प्रत्येक जैन के पास एकेक प्रति अवश्य होनी चाहिये। पृष्ठ १००० चित्र ४३ सुन्दर छपाई बढ़िया कागज़ पक्की जिल्द होने पर भी प्रचारार्थ मूल्य मात्र रु० ४)

(२) **ओसवाल कुल भूषण धर्मवीर "समरसिंह"**—यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें ढ़ाई हजार वर्षों की महान् घटनाए ओसवालों की उत्पत्ति श्रेष्ठगोत्र वैद्य मुहतों का महत्व शत्रुंजय तीर्थ का पन्द्रहवाँ उद्धारादि अनेक विषयपूर्ण होने पर भी प्रचारार्थ मूल्य मात्र रु० १।)

(३) **"ओसवालोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान"**—इसमें ओसवालोत्पत्ति समय के विषय में कई लोग शंकाएँ करते हैं जिनका सप्रमाण उत्तर देने के साथ अनेक प्रमाणों से यह बतलाने की चेष्टा की है कि ओसवालोत्पत्ति वि० सं० ४०० वर्ष पूर्व हुई है यह दलदार ग्रन्थ भेट दिया जायगा।

(४) **ओसवाल वंश स्थापक जैनाचार्य श्रीरत्नमलसूरीश्वर जी की "जयन्ति"**—इस किताब में आचार्य श्री रत्नमलसूरि का जोवन चरित्र एवं ओसवालों की उत्पत्ति की सब घटनाएँ लेक्चर के तौर पर लिखी गई हैं कि अज्ञान लोग इस किताब से ही अपने महान् उपकारी पुरुषों की जयन्ति मना के महान् पुन्योपार्जन कर सकें। नं० ३-४ की दोनों पुस्तकें खर्चा का चार आना आने पर भेजी जाँयगी।

पता—श्री जैन श्वेताम्बर सभा
मु० पीपाड़ सिटी मारवाड़।

लेख संग्रह भाग १-२-३

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज समाज सुधार विषय पर समय समय अखबारों में लेख दिया करते हैं पर वे लेख प्रायः गुर्जर पत्रों में छपते हैं इसलिए हिन्दी भाषा भाषियों के पठन पाठनार्थ हमने प्रस्तुत लेखों का संग्रह कर पुस्तक के रूप में मुद्रित करवाया है लेख बड़ी ही जोशीली भाषा में हैं जनता पर अच्छा प्रभाव डालने वाले हैं। धर्म महोत्सवों के सुअवसर पर इन पुस्तकों की प्रभावना दी जाय तो बड़ा भारी लाभ होगा। मूल्य प्रचारार्थ प्रत्येक भाग का दो पैसा ही रखा गया है।

श्वेताम्बर सभा
सिटी (मारवाड़)

ज्ञान पुष्पमाला
० फलौदी (मारवाड़)